तकनीकी बुलेटिन – 49

मतीरा

शुष्क क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास

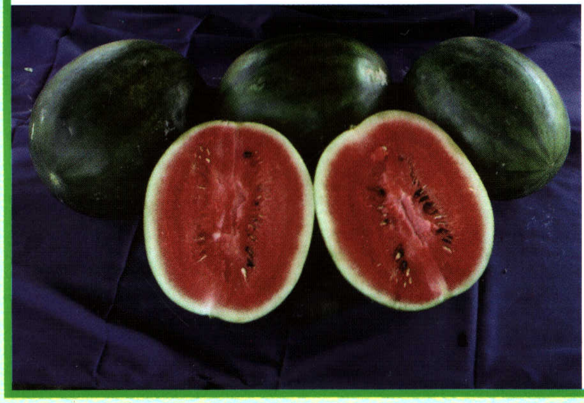

डॉ. दिलीप कुमार समादिया

भाकृअनुप
ICAR

केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद)
बीकानेर (राजस्थान)

CENTRAL INSTITUTE FOR ARID HORTICULTURE
के शु बा सं

तकनीकी बुलेटिन – 49

मतीरा

शुष्क क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास

डॉ. दिलीप कुमार समादिया

भाकृअनुप
ICAR

केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद)
बीकानेर (राजस्थान)

CENTRAL INSTITUTE FOR ARID HORTICULTURE
के शु बा सं

संदर्भ : मतीरा – शुष्क क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास (2013)
तकनीकी बुलेटिन – 49

प्रकाशक : डॉ. एस. के. शर्मा
निदेशक
केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
बीछवाल, बीकानेर–334 006 (राजस्थान)
दूरभाष : 0151–2250147, 2250960
फैक्स : 0151–2250145
ई–मेल : ciah@nic.in
वेबसाइट : ciah.ernet.in

लेखक : डॉ. दिलीप कुमार समादिया
प्रधान वैज्ञानिक (बागवानी)

तकनीकी सहयोग : श्री पी. पी. पारीक
श्री एम. के. जैन
श्री संजय पाटिल
श्री बी. आर. खत्री

मुद्रक : युगान्तर प्रकाशन, डब्ल्यु एच–23, मायापुरी, नई दिल्ली–110064

प्रस्तावना

भारत के पश्चिमी शुष्क क्षेत्र में बागवानी विकास के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा अन्य नीतिगत फैसलों के साथ यह भी निश्चित किया गया कि यहां की स्थानीय जलवायु में पैदा होने वाली परम्परागत फसलों व पेड़–पौधों जिनका उपयोग सब्जियों के रूप में किया जाता है, उन पर भी प्राथमिकता से कार्य किया जाए। इसको ध्यान रखते हुए केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान ने वर्ष 1994 में सब्जियों पर अनुसंधान के लिए परियोजनाओं के प्रारूप तैयार कर उन पर कार्य आरंभ किया। अनुसंधान के प्रथम चरण में मरूस्थलीय क्षेत्र की प्रतिकूल जलवायु व कम वर्षा में पैदा होने वाली फसलों जैसे – मतीरा, काचरी, काकड़िया, टिंडा व ग्वारफली एवं बहुउपयोगी पेड़–पौधों जैसे – खेजड़ी (सांगरी), फोग, खींप, ग्वारपाठा व तूंबा को शुष्क क्षेत्रीय सब्जियों के अंतर्गत चयनित किया गया, जिसका मुख्य उद्‌देश्य इनकी व्यवस्थित खेती के लिए आवश्यक फसल उत्पादन तकनीकों का विकास कर इन्हें व्यावसायिक स्तर पर प्रसारित करने हेतु किसानों तक पहुंचाना रखा गया।

केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान में वर्ष 1994 से सूखा सहिष्णु एवं बहुउपयोगी मतीरा व तरबूज के स्थानीय जननद्रव्यों को संग्रहित कर उनका मूल्यांकन किया। मूल्यांकित कुल 217 जननद्रव्यों में से अतिउपयोगी 65 जननद्रव्यों का संरक्षण किया। इन संरक्षित जननद्रव्यों का उपयोग फसल सुधार कार्यक्रम के तहत उन्नत किस्मों के विकास के लिए किया गया। मतीरे की व्यावसायिक खेती के लिए उन्नत किस्मों के विकास के साथ–साथ उत्पादन के लिए नई तकनीकें विकसित की गयी हैं जिससे प्रतिकूल जलवायु में इनका समावेश "फसल उत्पादन प्रक्षेत्र प्रबंधन व्यवस्था" में कर उत्तम गुणवत्तायुक्त फल उपज ली जा सके। संस्थान में विगत 20 वर्षों के सतत अनुसंधान एवं विकास कार्यों के परिणामस्वरूप विकसित की गयी प्रौद्योगिकी सूचनाओं को इस तकनीकी पुस्तिका '**मतीरा – शुष्क क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास**' में इस उद्‌देश्य से संकलित किया गया है कि यह सूचनाएं वैज्ञानिकों, तकनीकी अधिकारियों व किसानों तक सरलता से प्रसारित हो कर इनका अधिक से अधिक उपयोग व प्रचार–प्रसार हो सके।

वर्ष 1994 से 2012 तक मतीरा फसल के अनुसंधान कार्य एवं इस पुस्तिका के प्रकाशन में दिए गये अमूल्य सहयोग के लिए मैं, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली एवं केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर के संबंधित सभी पदाधिकारियों, निदेशकों, वैज्ञानिकों, तकनीकी अधिकारियों तथा कर्मचारियों का सदैव आभारी रहूँगा। आप सभी के सहयोग से ही इस क्षेत्र में सब्जियों की खेती को बढ़ावा देने के लिए उन्नत किस्मों एवं तकनीकों का विकास कर इन्हें प्रसारित करने का मुझे यह सुअवसर मिला है।

स्थान : बीकानेर
दिनांक : 05–09–2013

डॉ. दिलीप कुमार समादिया
शोध वैज्ञानिक एवं लेखक

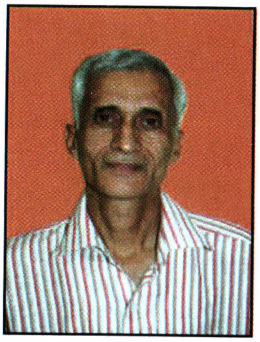

डॉ. सतीश कुमार शर्मा
निदेशक

केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
बीछवाल, बीकानेर–334 006 (राजस्थान)

प्राक्कथन

देश की उत्तर–पश्चिमी गर्म मरुस्थलीय जलवायु कृषि–बागवानी के लिए अत्यधिक प्रतिकूल है। यहां की परम्परागत खेती में स्थानीय पेड़–पौधों व फसलों का मानव जीवन, पशुधन तथा आजीविका में विशेष स्थान है। मरुस्थल में वर्षा ऋतु में पैदा होने वाला मतीरा, तरबूज की ही स्थानीय एवं बहुउपयोगी फसल है। मतीरे की व्यावसायिक खेती के लिए संस्थान में वर्ष 1994 से जननद्रव्य संग्रहण एवं संरक्षण के साथ–साथ फसल सुधार एवं उत्पादन तकनीकों के विकास के लिए सघन अनुसंधान कार्य किये हैं।

फल व सब्जियों का मानव आहार में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। अभी तक मरुस्थल का किसान बागवानी में सब्जी फसल उत्पादन एवं प्रबंधन की तकनीकियों से कम जागरूक है इसलिए इस पुस्तिका में उपलब्ध जानकारियां वैज्ञानिक ढंग से खेती करने के लिए लाभदायक सिद्ध होंगी। शोध वैज्ञानिक एवं लेखक डॉ. दिलीप कुमार समादिया ने विगत 20 वर्षों से शुष्क क्षेत्रीय सब्जी फसलों पर सतत् अनुसंधान के आधार पर प्रतिकूल जलवायु में मतीरा उत्पादन की तकनीकियों का विकास किया है जिनको इस पुस्तिका में सहज रूप में संग्रहित किया गया है। लेखक ने मतीरे की वैज्ञानिक जानकारियों के साथ–साथ फसल उत्पादन के लिए स्थानीय जलवायु के अनुरूप विकसित तकनीकीयों का समावेश भी किया है।

हिन्दी भाषा में सहज एवं सरल भाषा में लिखी पुस्तिका ''**मतीरा – शुष्क क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास**'', किसानों, सब्जी उत्पादकों, कृषि प्रसार एवं प्रशिक्षण अधिकारियों, विद्यार्थियों, शिक्षकों तथा वैज्ञानिकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। अतः मैं, लेखक को इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए हार्दिक धन्यवाद और शुभकामनाएं देता हूँ।

(सतीश कुमार शर्मा)

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	विवरण	पृष्ठ संख्या
1	मतीरा–एक परिचय	1
2	उत्पत्ति	1
3	वानस्पतिक अध्ययन	2
4	जैव–विविधता संग्रहण एवं संरक्षण	3
5	आर्थिक महत्व व पोषण	7
6	उन्नत किस्मों का विकास	8
7	प्रतिकूल जलवायु में प्रक्षेत्र प्रबंधन तकनीक	14
8	जलवायु	23
9	भूमि	23
10	प्रक्षेत्र/खेत की तैयारी	23
11	खाद व उर्वरक	24
12	बुवाई का समय	25
13	बीज की मात्रा	26
14	बीज का चयन एवं उपचार	26
15	फसल बुवाई की विधियॉ	26
16	सिंचाई जल प्रबन्धन	30
17	निराई–गुड़ाई	34
18	नमी संरक्षण	35
19	फसल उत्पाद प्रबन्धन	36
20	आय–व्यय का ब्यौरा	37
21	फसल सुरक्षा	38
22	प्रमुख कीट एवं नियंत्रण	38
23	प्रमुख रोग एवं नियंत्रण	41
24	अकीटनाशी जीव एवं रोकथाम	42
25	अजैविक विकार एवं उनके उपाय	42
26	बीज उत्पादन तकनीकी	43

मतीरा – शुष्क क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास

मरूप्रदेश में मतीरे की खेती प्राचीन समय से होती आ रही है। मतीरा, तरबूज की एक विशिष्ट तथा सूखा सहिष्णु स्थानीय प्रजाति है। इस प्रदेश में मतीरा आम आदमी को गुणकारी सब्जी एवं फल प्रदान करता है। मरूधरा के निवासियों ने इस अमृत–फल को सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिवेशों में एक विशेष दर्जा देकर बहुपयोगी फसल के रूप में मान्यता दी है। देश के उत्तरी–पश्चिमी शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों विशेषकर राजस्थान एवं उसकी सीमाओं से लगते प्रदेशों (हरियाणा, पंजाब, गुजरात) एवं पाकिस्तान की रेगिस्तानी जलवायु में मतीरा, रेतीले टीलों पर बाजरा, ग्वार, मोठ, तिल आदि वर्षा आधारित परम्परागत खेती की पद्धतियों में मिश्रित फसल के रूप में पैदा किया जाता है।

राजस्थान के उत्तरी–पश्चिमी रेतीले टीलों वाले बीकानेर, चूरू, नागौर, बाड़मेर, जैसलमेर, जोधपुर, पाली एवं जालौर तथा आसपास के शुष्क व अर्द्धशुष्क जलवायु वाले जिलों में मतीरे की खेती वर्षा एवं ग्रीष्मकालीन फसल के रूप में की जाती है। रेगिस्तानी क्षेत्र में वर्षा ऋतु में पैदा होने वाला मतीरा अपने विशिष्ट लक्षणों के कारण ही तरबूज की प्रजातियों से भिन्न है। इनके पौधों का गहरा एवं विस्तृत जड़ तन्त्र होने से यह रेतीली भूमि की निचली परतों से भी पानी अवशोषित करने में सक्षम होता है। इसमें सूखा सहन करने की क्षमता है तथा अधिक तापमान एवं कठोर जलवायु वाली परिस्थितियाँ होने पर भी फल व बीज की अच्छी उपज देता है जिस कारण इसको आर्थिक दृष्टि से लाभकारी फसल की मान्यता मिली है।

उत्पत्ति

मतीरा, कुष्माण्ड कुल (cucurbitaceae) का मौसमी व बेलवाला पौधा है जिसको वैज्ञानिक भाषा में सिट्रुलस लेनेटस (थुम्ब), मतसूम एवं नकाई के नाम से जाना जाता है। इनमें गुणसूत्र की संख्या 2 एन = 22 होती है। मूलरूप से तरबूज की प्रजातियों का उद्गम स्थल अफ्रीका का उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु वाला क्षेत्र है। तरबूज (*Citrullus lanatus*) की मूल उत्पत्ति अफ्रीका है जहाँ भूमध्य रेखा के दोनों ओर यह आज भी जंगली अवस्था में पाया जाता है। दक्षिण अफ्रीका व पुराने मिश्र की आदि–जातियाँ सदियों से इसकी खेती करती आ रही हैं। जहाँ से इसको सदियों पूर्व पुराने मिश्र व भारत में लाया गया। फिर यह भारत से लगभग 900–1000 ईस्वी में चीन होते हुए विश्व के कई देशों में पहुँचा।

वर्तमान में तरबूज की व्यावसायिक खेती भारत एवं चीन सहित एशिया के कई देशों, यूरोप, अफ्रीका, केरेबियन द्वीप तथा अमेरिका के कई प्रान्तों में होती है। भारत में इसकी खेती उत्तर

की गंगा, यमुना, मध्य की चम्बल, बनास, माही, नर्मदा तथा दक्षिण की पेनार, कावेरी, कृष्णा एवं गोदावरी नदियों के पाटों तथा इनकी सहायक नदियों में व्यापक स्तर पर की जाती है। देश के शुष्क व अर्द्धशुष्क जलवायु वाले प्रदेशों में इसकी व्यवस्थित खेती सिंचित फसल के रूप में भी की जाती है। राजस्थान के मरूस्थलीय क्षेत्र में वर्षा ऋतु में पैदा होने वाला मतीरा भी तरबूज की स्थानीय प्रजाति है एवं इसकी खेती मिश्रित फसल के रूप में व्यापक स्तर पर की जाती है, साथ ही सिंचाई के संसाधनों के विकास से इसकी खेती ग्रीष्मकालीन फसल के रूप में की जाने लगी है।

उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर इतना तो निश्चित रूप से कह सकते हैं कि सिट्रुलस प्रजाति में मतीरा (तरबूज) भारत में उत्पत्ति का द्वितीय केन्द्र अवश्य है। सिट्रुलस की दूसरी प्रजाति कोलोसेन्थिस (*colocynthis*) हमारे देश के गर्म व शुष्क एवं अर्द्धशुष्क प्रदेशों में जंगली अवस्था में पाया जाता है। इसके पौधे बहुवर्षीय तथा अत्यधिक सूखा सहिष्णु होते हैं। फलों का गूदा कड़वा होता है तथा फलों को स्थानीय भाषा में तुम्बा (*tumba*) कहते हैं। तुम्बे के बीजों का उपयोग व्यावसायिक स्तर पर तेल निकालने में किया जाता है।

भारत के उत्तर–पश्चिम क्षेत्रों में सिट्रुलस प्रजातियों से मिलती एक प्रजाति ओर भी पायी जाती है परन्तु इसके पौधे की संरचना एवं फलों के लक्षणों के आधार पर कई विभिन्नताएँ पायी गई हैं। इसको वैज्ञानिक भाषा में पेरोसिट्रुलस फिसटुलोसस (*Praecitrullus fistulosus*) तथा स्थानीय भाषा में टिण्डा (tinda, round melon) के नाम से जाना जाता है तथा यह माना गया है कि इसका उद्‌गम स्थल भारतवर्ष ही है। यह देश के कई प्रांतों में सब्जी के लिए ग्रीष्म व वर्षाकालीन फसल के रूप में व्यावसायिक स्तर पर पैदा किया जाता है। राजस्थान में टिंडा एक बहुत ही लोकप्रिय मौसमी सब्जी है।

वानस्पतिक अध्ययन

मतीरे के पौधे मौसमी तथा दिखने में प्रायः तरबूज के पौधे जैसे ही हैं, फिर भी इनके कई लक्षणों में भिन्नताएँ पाई गई हैं। मतीरे की पत्तियाँ गहराई तक विभक्त होती हुई गहरे हरे रंग की होती हैं। पत्तियाँ लगभग 13.2–22.5 x 13.0–18.4 सेमी. लम्बाई एवं चौड़ाई लिये हुए तीन मुख्य खण्डों में विभक्त होती हैं। पत्तियों के नीचे वाले जोड़े के दोनों खण्ड पुनः 2–3 एवं ऊपर वाले खण्ड 5–7 छोटे खण्डों में विभक्त होते हैं। पत्ती के डण्ठल के पास प्रथम खण्ड की चौड़ाई 12–18 सेमी., मध्य खण्ड की चौड़ाई 9–12 सेमी. एवं ऊपरी खण्ड की चौड़ाई 6–7 सेमी. तक होती है। इसकी पत्तियाँ खुरदरी एवं हल्के रोये वाली होती हैं तथा शाखाओं एवं तनों पर भी महीन रोये होते हैं। मध्यम वृद्धि से फैलने वाली बेलें 2.5 से 5.8 मीटर तक लम्बी पायी गई हैं जिनमें 3–7 तक मुख्यः शाखाएँ होती हैं।

मतीरे के पौधे प्रायः उभयलिंगाश्रयी होते हैं। इसमें पुउभयालिंगाश्रयी पौधे भी पाये गए हैं। बेलों में पहले नर व बाद में मादा फूल, जो कि चक्रीय प्रणाली में मुख्य व सहायक शाखाओं पर आते हैं। फूल छोटे आकार व हल्के पीले रंग के होते हैं। पत्तियों की गांठों में नर फूल तो 2–3 के गुच्छ में होते हैं परन्तु मादा फूल एकल ही आते हैं। नर व मादा फूल लगभग एक समान आकार के दिखाई देते हैं तथा इनकी लम्बाई व चौड़ाई 2.9– 3.7 सेमी. के मध्य पायी जाती है। नर फूलों के डण्ठल 3.0–3.5 सेमी. तथा मादा फूलों के डण्ठल 3.5–5.5 सेमी. तक लंबे होते हैं। मादा फूलों में अण्डाशय गोल अथवा दीर्घायताकार व रोये युक्त होते हैं। फूल खिलने के दिन अण्डाशय की लम्बाई 1.21–1.82 सेमी. व व्यास 1.18–1.55 सेमी. तथा हल्के से गहरे हरे रंग के जो कि 16 धारियाँ युक्त होते हैं। पौधों में नर फूल अधिक संख्या में आते हैं। फूलों में परागण की क्रिया प्रातः 6.00 से 9.00 बजे के मध्य अधिक सक्रिय पाई गयी है तथा इस समय पश्चात् वातावरण में तापमान की बढ़ोतरी के साथ वर्त्तीका द्रव सूखने लगता है।

पौधें पर आने वाले मादा फूलों में से 5–25 तक फल जमाव हो जाता है परन्तु 3–8 प्रारंभिक जमाव वाले फलों का समुचित विकास हो पाता है। मतीरे के फलों के आकार व छिलके के रंगों में काफी विविधता पायी जाती है। फलों का छिलका चमकदार एवं नर्म होता है जिससे फल फटते नहीं हैं। फलों पर हल्की से गहरी हरी धारियाँ पायी जाती हैं। कुछ जनन द्रव्यों में धारियाँ नहीं बनती है परन्तु धारियों का जाल बना नजर आता है। पूर्ण विकसित फल गोल, दीर्घायताकार अथवा लम्बे आकार के होते हैं। पके फल छोटे से मध्यम (2.5–7.5 किलोग्राम) भार वाले होते हैं। फलों में खाने वाला गूदा मुलायम एवं सफेद से हल्का गुलाबी लाल रंग का होता है तथा यह मीठा व रसीला होता है। मतीरे का खाने योग्य गूदा तरबूज की किस्मों के गूदे की तरह ठोस एवं लाल रंग का नहीं होता है। फलों के अधिक पकने पर गूदा रेशेदार हो जाता है। इनके फलों में अखाद्य व छिलके वाला भाग ज्यादा होता है। मतीरे के बीज बड़े एवं खाकी रंग के होते हैं तथा एक फल में 500–800 तक बीज पाये जाते हैं जिनका सूखने पर वजन 45–65 ग्राम तक रहता है। बीज की लंबाई 0.85–1.25 सेमी. व चौड़ाई 0.65–0.98 सेमी. तथा 100 बीजों का वजन 5.9–9.5 ग्राम तक होता है।

जैव–विविधता संग्रहण एवं संरक्षण

तरबूज प्रजातियों के पौधों में वानस्पतिक गुणों, फलों के आकार, रंग–रूप तथा खाने वाले गूदे की मात्रा, गुणवत्ता, रंग एवं मिठास व बीजों आदि के लक्षणों के आधार पर जैव–विविधता को दर्शाया जाता है। मरूप्रदेश में पैदा होने वाला मतीरा इसकी एक स्थानीय प्रजाति है तथा इसमें पर–परागण क्रिया से फल जमाव होते हैं। इसमें जंगली प्रजाति तुम्बा एवं उन्नत तरबूज की किस्मों से भी आपसी परागण हो जाता है। पौधों में अचानक परिवर्तन (spontaneous mutation) से भी लक्षणों में बदलाव हो जाता है जो कि जैव–विविधता के लिए अनुकूल है। इन

सभी कारकों के कारण कई बार मतीरे में भी अन्य प्रकार के फूल (नर, मादा व एकलिंगी), पत्तियाँ (बड़े आकार की), फल (आकार, रंग व गूदे के लक्षण) व बीजों (लाल, काले, चितकबरे) आदि के लक्षणों के रूप में असमानतायें आ जाती हैं जो कि मतीरे की स्थानीय व प्रचलित प्रजातियों से अलग होते हैं। तरबूज प्रजाति के पौधों व फलों के लक्षणों में पायी जानी वाली जैव–विविधता के आधार पर ही विश्व के कई देशों में इसकी विविध किस्मों के रूप में खेती होती है। जंगली व स्थानीय प्रजातियों के जननद्रव्यों में पाये जाने वाले विशेष गुणों में से प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता एवं गुणवत्ता युक्त फल वाली नई–नई किस्मों का विकास जैव–विविधता के सतत् उपयोग व फसल सुधार में प्रजनन के तरीकों की देन रही है।

केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर में वर्ष 1994 से 2005 तक मतीरे की स्थानीय प्रजातियों के साथ–साथ इस प्रदेश में पैदा होने वाली तरबूज की प्रजातियों के जननद्रव्यों का सर्वेक्षण, संग्रहण तथा मूल्यांकन कार्य विधिवत् अनुसंधान के रूप में इस तरह किया गया कि इनके बहुपयोगी एवं अतिविशिष्ट लक्षणों वाले जननद्रव्यों का चयन कर संरक्षण किया जा सके। पहली बार प्रारंभ किये गये इस अनुसंधान कार्य का मुख्य उद्देश्य मतीरे की सूखा सहिष्णु स्थानीय जननद्रव्यों में से उत्तम गुणवत्ता युक्त उपज देने वाली किस्मों का विकास करना है जिससे मरूक्षेत्र में इसकी खेती व्यावसायिक स्तर पर की जा सके।

इस कार्य के लिए राजस्थान के शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों का वर्ष 1994 से 2005 तक सघन सर्वेक्षण कार्य कर मतीरे व तरबूज प्रजातियों के कुल 217 जननद्रव्यों का संग्रहण कर उनका बारम्बार मूल्यांकन बीकानेर की जलवायु में किया गया। इनमें देश–विदेश से एकत्रित की गई तरबूज की 11 किस्में भी सम्मिलित हैं जिनका मूल्यांकन उनकी उपयोगिता के लिए इस जलवायु में किया गया है। संस्थान में विगत 20 वर्षों से मतीरे की जैव–विविधता पर कार्य के फलस्वरूप कुल 217 जननद्रव्यों में से अतिउपयोगी 65 जननद्रव्यों को राष्ट्रीय जीन बैंक, एनबीपीजीआर; नई दिल्ली में संरक्षित किया गया है, साथ ही 65 जननद्रव्य व प्रजनक लाइनों के रूप में संस्थान में भी फसल सुधार कार्यक्रम के लिए सुरक्षित रखा गया है।

मतीरे के जननद्रव्यों में फलों की विविधता

राजस्थान के मरूस्थलीय प्रदेश में वर्ष 1994 से 1997 तक किये गये सर्वेक्षण में यह पाया गया कि वर्षा आधारित मिश्रित फसलों के साथ पैदा होने वाली मतीरे की फसल से लगभग 10 प्रतिशत बेलों से ही खाने योग्य मीठे फल मिलते हैं परंतु इनकी भी विश्वसनीयता काटने पर ही सुनिश्चित होती है। प्रायः अवांछनीय फलों से बीज अलग कर उन्हें पशुओं को खिलाने के उपयोग में लिया जाता है। फलों की अविश्वसनीयता का मुख्य कारण किसानों को स्थानीय मतीरे की उन्नत किस्म के बीजों का उपलब्धता न होना, साथ ही उनके द्वारा स्वयं उत्पादित मिश्रित बीजों का उपयोग करना प्रमुख है। पर–परागण की क्रिया, लगातार मिश्रित बीजों का स्वविवेक के आधार पर चयन एवं सदियों से मरूस्थलीय जलवायु में खेती होते रहने से मतीरे के जननद्रव्यों में बहुत जैव विविधता पायी गई है।

संस्थान में मतीरे के संग्रहित 217 जननद्रव्यों का वर्ष 1994 से 2005 तक विधिवत् जैव–विविधता के लिए आंकलन कर उनमें पौधों, फलों एवं उनकी गुणवत्ता के आकड़े एकत्रित किए गए जिनके लक्षणों की विविधता का स्तर सारणियों में दर्शाया गया है। मतीरे के जननद्रव्यों में वातावरणीय कारकों जैसे अत्यधिक तापमान व सूखे की स्थिति में पौधों की वृद्धि एवं फलन, कीड़ों व बीमारियों के आक्रमण का प्रभाव तथा समय बदलकर (वर्षा व ग्रीष्म कालीन) खेती करने पर फसल उत्पादकता एवं फलों की गुणवत्ता के लक्षणों में भी विविधता पायी गई है। संस्थान में मूल्यांकित एवं वर्गीकृत कर चयनित जननद्रव्यों के विशिष्ट लक्षणों के आधार पर उन्हें किस्में विकसित करने के लिए वर्ष 1996 से 2012 तक मतीरा नस्ल सुधार कार्यक्रम के लिए उपयोग में लिया गया है।

सारणी 1: मतीरा (सिट्रूलस लेनेटस) जननद्रव्य सर्वेक्षण एवं संग्रहण, सीआईएएचः बीकानेर (वर्ष 1994 से 2001)।

संग्रहण के प्रकार	जननद्रव्य संग्रहण के स्थान व तरीके	संग्रहण वर्ष	जननद्रव्यों की संख्या
मतीरे के स्थानीय जननद्रव्य	राजस्थान के शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में सर्वेक्षण कार्य कर मतीरे के स्थानीय जननद्रव्य का संग्रहण।	1994 व 1995	178
तरबूज किस्मों का संग्रहण	देश व विदेशों के विभिन्न सब्जी अनुसंधान संबंधी केन्द्रों से एकत्रित तरबूज की किस्में।	1995 से 1997	11
तरबूज के स्थानीय जननद्रव्य	राजस्थान के अर्द्धशुष्क क्षेत्रों से सर्वेक्षण कार्य कर तरबूज के स्थानीय जननद्रव्य का संग्रहण।	2000 व 2001	28
		कुल	**217**

सारणी 2: संस्थान में मूल्यांकित मतीरे के जननद्रव्यों के प्रमुख लक्षणों में विविधता।

लक्षण	विविधता का स्तर
बेल की लम्बाई (मीटर)	2.21 – 6.50
मुख्यः शाखाओं की संख्या/पौधा	3.12 – 6.45
प्रथम नर फूल खिलने में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	24.5 – 45.2
प्रथम मादा फूल खिलने में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	40.2 – 55.5
प्रथम मादा फूल खिलने की पौधे पर गांठ संख्या	5.4 – 18.5
एक पौधे पर मादा फूलों से फलों का जमाव	3.5 – 20.8
प्रथम फल तुड़ाई में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	72.5 – 110.5
विपणन योग्य फलों की संख्या/पौधा	0.85 – 7.45
फल की लंबाई (सेमी.)	10.32 – 40.50
फल की परिधी (सेमी.)	25.91 – 73.54
फल का वजन (किग्रा.)	0.50 – 8.55
खाने योग्य गूदे की मोटाई (सेमी.)	9.85 – 18.55
अखाद्य गूदे की मोटाई (सेमी.)	1.25 – 3.15
बीजों की संख्या/फल	280 – 840
टीएसएस (डिग्री ब्रिक्स)	2.12 – 10.5
फलों का आकार	गोल, दीर्घायताकार या लम्बे आयताकार
छिलकों का रंग	हरी व गहरी हरी धारियाँ, हल्के या गहरे हरे बिना धारीदार, हल्के हरे पतली लाइनों युक्त जालीदार,
गूदे का रंग व ठोसपन	गूदा सफेद, हल्का गुलाबी या लाल रंग एवं नरम से मध्यम ठोस
बीजों का रंग	खाकी, भूरा, काला, लाल, सफेद एवं मिश्रित मटमैले

सारणी 3: मतीरा जननद्रव्यों के आनुवंशिकीय लक्षणों में विविधता के घटक (वर्ष 1996 की ग्रीष्म व वर्षा ऋतु में जननद्रव्यों के मूल्यांकन के आधार पर)।

लक्षण	औसत	जीसीवी (प्रतिशत)	पीसीवी (प्रतिशत)	हेरेटेबिलीटी (एच² ब्राडसेंस)	जेनेटिक एडवांस (जीए)	जेनेटिक गेन
प्रथम मादा फूल खिलने में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	51.45	16.19	16.29	98.93	17.04	27.29
प्रथम फल तुड़ाई में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	89.64	7.74	7.85	97.41	14.12	15.75
फलों की संख्या/पौधा	7.21	19.11	19.76	93.59	1.57	21.77
विपणन योग्य फलों की संख्या/पौधा	3.62	32.80	33.03	98.60	9.42	66.85

लक्षण	औसत	जीसीवी (प्रतिशत)	पीसीवी (प्रतिशत)	हेरेटेबिलीटी (एच^2 ब्राडसेंस)	जेनेटिक एडवांस (जीए)	जेनेटिक गेन
फल का वजन (किग्रा.)	3.97	18.16	18.68	94.54	1.44	36.27
फल की लंबाई (सेमी.)	31.73	12.72	12.84	98.19	8.24	25.96
फल की परिधी (सेमी.)	61.48	8.00	8.08	98.17	10.05	16.34
खाने योग्य गूदे की मोटाई (सेमी.)	13.75	10.86	12.51	75.38	2.67	19.41
अखाद्य गूदे की मोटाई (सेमी.)	1.99	5.27	6.74	61.11	0.168	8.44
टीएसएस (डिग्री ब्रिक्स)	7.58	13.29	13.34	99.21	2.06	27.17
बेल की लंबाई (मीटर)	3.24	19.61	20.04	95.73	1.28	39.50
शाखाओं की संख्या/पौधा	5.51	12.67	12.88	97.79	1.423	25.82

आर्थिक महत्व व पोषण

मरूधरा में पैदा होने वाला मतीरा एक बहुपयोगी फसल है इसके छोटे व कच्चे फल सब्जी बनाने, पके फलों से प्राप्त गूदा रसीला व पौष्टिक आहार के रूप में, बीजों को भूनकर खाने या उनसे प्राप्त गीरी मिठाइयों में तथा फलों का अखाद्य गूदा पशुओं को खिलाने के उपयोग में लिये जाते हैं। मतीरे के पौधों से प्राप्त 80–100 ग्राम वजन की लोइयों (कच्चे फल) से सब्जी बनाई जाती है, इनमें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, रेशा, केल्सियम व फॉस्फोरस प्रचुर मात्रा में होते हैं। ग्रीष्म ऋतु में इस प्रदेश में जब अन्य सब्जियों की खेती करना कठिन होता है, तब मतीरे की खेती कर लोइयों का उत्पादन किया जा सकता है एवं स्थानीय बाजारों में इनकी मांग के कारण लोइया 10 से 25 रूपये प्रति किलो की दर से बेचा जाता है।

तरबूज की भाँति पके मतीरे का गूदा रसीला व मीठा होता है। मरूप्रदेश के लोग मतीरे के गूदे का रस बनाकर चाव से पीते हैं जो प्यास तो बुझाता ही है वरन् शरीर को ठण्डा रखकर 'लू' से भी बचाता है। गर्मियों में मतीरे के सेवन से शरीर की खुश्की दूर होती है, इसलिये कविवर बिहारी ने कहा है – **"प्यासे दुपहरे जेठ के, लिए मतीरने सोधि"**। मतीरे के स्वादिष्ट गूदे में अन्य पोषक तत्वों के साथ 95 प्रतिशत तक जल होता है अतैव मरूधरा में इसको जल के इस विशेष भण्डार के कारण ही **"अमृत फल"** की संज्ञा दी गई है। मतीरे के गूदे व रस को नमक के साथ उपयोग करने पर मूत्र विषयक रोगों में आराम मिलता है। पीलिया रोगियों के लिए गूदा बहुत फायदेमंद है क्योंकि इसकी सुक्रोज शर्करा शरीर में खून को साफ कर उसकी मात्रा बढ़ाती

है। इसी तरह गूदे का नियमित सेवन उच्च रक्तचाप को भी नियंत्रित करने में सहायक है। फलों का छिलका (सिफलियाँ) पशुओं के लिए लाभकारी आहार है।

फलों में खाने योग्य गूदे की मात्रा, गुणवत्ता एवं पोषक तत्वों में भारी विभिन्नताएँ पायी गई हैं। सामान्यतः मतीरे की स्थानीय प्रजातियों में 35–40 प्रतिशत भाग अखाद्य होता है। खाने योग्य गूदे में 90–95 प्रतिशत तक जल की मात्रा पायी गई है। 100 ग्राम ताजा गूदे में पोषक तत्वों के रूप में 3.5–7.4 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 0.18–0.25 प्रतिशत प्रोटीन, 0.10–0.20 प्रतिशत वसा, 0.25–0.35 प्रतिशत रेशा तथा 0.20–0.30 प्रतिशत खनिज तत्व पाये जाते हैं। खनिज तत्वों में कैल्शियम, फॉस्फोरस, लोहा के साथ–साथ पोटेशियम की मात्रा अधिक होती है। इसके 100 ग्राम गूदे से 20–30 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है।

मतीरे के बीज बहुपयोगी हैं एवं इनका व्यावसायिक महत्व है। बीजों को भूनकर खाया जाता है तथा 100 ग्राम बीजों से लगभग 500 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। बीजों में 10 प्रतिशत प्रोटीन एवं गूदे की तुलना में अधिक खनिज तत्व होते हैं। अतः पोषण की दृष्टि से बीज भी महत्वपूर्ण हैं। बीजों से प्राप्त गीरी का उपयोग ठंडाई, शर्बत, मिठाई एवं औषधियों में किया जाता है। इसकी गीरी में 35–40 प्रतिशत तक वसा होती है एवं इससे तेल निकाला जाता है। खुशबू युक्त हल्का पीला तेल स्वादिष्ट ही नहीं वरन् मूंगफली अथवा तिल के तेल के समान गुणकारी भी होता है। तेल निकालने पर प्राप्त खली का उपयोग पशुओं को खिलाने अथवा खाद के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

उन्नत किस्मों का विकास

इस प्रदेश में अच्छी किस्मों के अभाव में किसान स्वविवेक से उत्पादित स्वस्थ एवं मीठे मतीरे के बीज बुवाई हेतु काम में लेते रहे हैं। पर–परागण की क्रिया होने से इस प्रकार चयनित एवं एकत्रित किये बीज बोने पर उत्पादित फलों के आकार, रंगरूप, गूदे की मात्रा, मिठास, रंग व ठोसपन में काफी भिन्नता आ जाती है। इस प्रकार अधिकांश उत्पादन निम्न कोटि का ही होता है, साथ ही स्वस्थ व अच्छे समझे जाने वाले फलों की गुणवत्ता भी काटने के पहले तक अविश्वसनीय बनी रहती है। एक और जहाँ मतीरा, वर्षा आधारित लोकप्रिय फसल है तो दूसरी ओर इस प्रजाति में उन्नत किस्मों का अभाव होने से यहाँ का किसान तरबूज की भांति गुणवत्ता वाली एवं लाभकारी फसल लेने में असमर्थ रहा है।

केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान ने वर्ष 1994 में सूखा सहिष्णु सब्जियों वाली फसलों में सर्वप्रथम मतीरे पर अनुसंधान कार्य प्रारम्भ किया था जिसका प्रमुख उद्देश्य उन्नत किस्मों व फसल उत्पादन तकनीकों का विकास करना था। इसके लिए मतीरे की स्थानीय जैव–विविधता

के साथ–साथ तरबूज की उन्नत प्रजातियों का भी संग्रहण कर इस जलवायु में विधिवत् आंकलन किया गया। वर्ष 1995 से 1997 तक किये गये अनुसंधान कार्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाले गये कि मरूक्षेत्र में ग्रीष्म व वर्षाकालीन फसल के रूप में मतीरा/तरबूज की खेती तो संभव है लेकिन इस क्षेत्र में अच्छी गुणवत्ता वाले फलोत्पादन एवं सफल खेती हेतु स्थानीय स्तर पर उन्नत किस्मों के विकास की आवश्यकता है जो यहाँ की प्रतिकूल जलवायु में स्थिर उपज दे सके।

इसी अवधि में तरबूज की जाँची गई प्रजातियों (जैसे दुर्गापुरा मीठा, दुर्गापुरा केसर, शुगर बेबी, अर्का मनिक, अर्का ज्योति, चारलेस्टन, महबोबी व संकर किस्में) में से अधिकांश किस्में यहां की कठोर जलवायु में फसलोत्पादन के लिए विफल रही हैं। मूल्यांकित तरबूज की किस्में यहां के ग्रीष्मकालीन वातावरणीय प्रकोप जैसे अत्यधिक लम्बी अवधि वाले तापमान (44–47 डिग्री सेल्सियस), शुष्कता, लू व धूल भरी आंधियों की स्थितियाँ व्यावसायिक फसल उत्पादन के लिए प्रतिकूल हैं, साथ ही इन किस्मों की पैदावार के लिये अधिक मात्रा में सिंचाई जल की आवश्यकता (20–25 सिंचाई, नाली विधि) पड़ती है। तरबूज के फलों में अत्यधिक फटाव होने से फसल आर्थिक रूप से लाभदायक नहीं रहती है एवं मई–जून की प्रचंड गर्मी के प्रकोप से फसल पूरी तरह से नष्ट हो जाती है। जबकि वर्षाकालीन फसल में तरबूज की इन किस्मों में अच्छी गुणवत्ता युक्त उपज नहीं होती है, साथ ही इनमें कीड़े व बीमारियों का सर्वाधिक प्रकोप पाया गया है।

दूसरी ओर संस्थान में मतीरे की स्थानीय जननद्रव्यों में से शुद्धीकरण कर विकसित की गई किस्में वर्षा व ग्रीष्मकालीन फसल के रूप में पूर्णरूप से उपयोगी एवं लाभकारी रही हैं। अनुसंधान तथ्यों को दृष्टिगत रखकर वर्ष 1997–1998 में मतीरे की नवविकसित स्थानीय प्रजातियों को उनकी गुणवत्ता एवं उत्पादकता हेतु वृहद् स्तर पर जांचा गया। इस प्रकार चार वर्षों के ग्रीष्म व वर्षाकालीन फसल सुधार एवं अनुसंधान आंकड़ों के आधार पर चयनित दो अच्छी गुणवत्ता व उपज वाली किस्में जो कि एएचडब्ल्यू–19 व एएचडब्ल्यू–65 हैं जिनको वर्ष 1998 में खेती के लिए संस्तुति कर इनके बीजों को किसानों को उपलब्ध करवाया गया। इनकी चयन प्रक्रिया में गूदे के रंग, ठोसपन एवं मिठास के साथ–साथ स्थिर उत्पादकता पर विशेष ध्यान रखा गया है।

स्थानीय स्तर पर खेती हेतु मतीरे की उन्नत किस्में वर्ष 1998 में जारी करते समय यह स्पष्ट किया गया था कि इनकी तुलना तरबूज की उन्नत किस्मों के फलों से करने पर कुछ प्रमुख असमानताएँ निश्चित हैं जिनमें से गूदे की गुणवत्ता व बीज की मात्रा प्रमुख है। इन नवविकसित मतीरे की किस्मों का गूदा हल्का गुलाबी रंग का एवं कम मिठास वाला है। एक ओर मतीरे की किस्मों में तरबूज की तरह उत्तम गुणों वाले गूदे का न आ पाना वहीं दूसरी ओर तरबजू की उन्नत प्रजातियों का इस वातावरण में असफल हो जाने से नस्ल सुधार कार्य आगे बढ़ाना आवश्यक हो गया था। इसलिए वर्ष 1998 से मतीरा व तरबूज की उन्नत व चयनित प्रजातियों

में आपसी संकरीकरण तथा चयन प्रक्रिया अपनाकर फसल सुधार कार्यक्रम को आगे बढ़ाया गया।

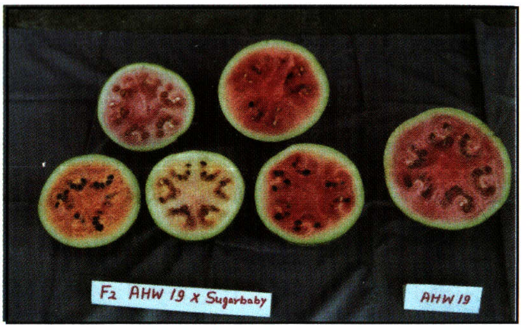

मतीरा एएचडब्ल्यू–19 एवं शुगर बेबी में संकरीकरण पश्चात् संकर फल तथा दूसरी पीढ़ी से प्राप्त फलों के गूदे में भिन्नताऐं

मतीरा व तरबूज की चयनित किस्मों में संकरीकरण पश्चात् किये गए अनुसंधान कार्य से वर्ष 2002 में ऐसी सफलताऐं मिली कि मतीरे में भी तरबूज के गुणों को समाहित किया जा सकता है। संकरीकरण से विकसित चयनों में से मतीरा 'एएचडब्ल्यू–19 x शुगर बेबी' से प्राप्त हुए पाँच पारिवारिक खण्डों का विधिवत् आंकलन कर छठी पीढ़ी से चयन प्रक्रिया अपनाई गई। गुणवत्ता के आधार पर चयनित संततियों के खण्डों को उपज एवं स्थिरता के लक्षणों में तुलनात्मक अध्ययन हेतु ग्रीष्म व वर्षाकालीन फसलों के रूप में जांचा गया। परिणामस्वरूप वर्ष 2005 में एक ऐसी किस्म तैयार हुई जिसके फल बाहरी रूप से मतीरे व भीतर से तरबूज के समतुल्य थे। वर्ष 2005 से 2007 तक फसल उत्पादन के तुलनात्मक अध्ययनों से यह पाया गया कि मतीरे की नवविकसित प्रजाति (एफ–6/ए) की गुणवत्तायुक्त उपज यहाँ की कठोर जलवायु में स्थिर है एवं बारह वर्षों के सतत् अनुसंधान से यह सुनिश्चित हो गया कि नस्ल सुधार कार्य के फलस्वरूप मरूक्षेत्र में भी मतीरे में लाल, ठोस व मीठे गूदे वाला विश्वसनीय फल नई किस्म के रूप में पैदा हो सकेगा। वर्ष 2007 में इस नवविकसित प्रजाति को 'थार माणक' के नाम से संस्थान द्वारा मरूप्रदेश में व्यावसायिक खेती के लिए संस्तुति की गई एवं किसानों को इसके बीज उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

इसी तरह मतीरे में नस्ल सुधार कार्यक्रम के अंर्तगत वर्ष 2006 से 2012 तक दो ऐसी प्रजातियों का चयन किया गया है जिनके फलों में बीज की मात्रा अधिक पाई गई एवं ये प्रजातियाँ एएचडब्ल्यू आरएसएस–1 (लाल बीज) तथा एएचडब्ल्यू बीएसएम–1 (काले बीज) हैं। इन दोनों लाईनों में फलों और बीजों की उपज एवं स्थिरता को देखते हुए इनकी व्यावसायिक खेती हेतु तरीकों की संभावनाऐं तराशी जा रही हैं। संस्थान में मतीरे पर दो दशक के फसल

सुधार अनुसंधान एवं विकास कार्यों के फलस्वरूप विकसित हुई प्रजातियों का वर्णन निम्न प्रकार दिया जा रहा है :–

मतीरा एएचडब्ल्यू–19

स्थानीय जननद्रव्यों में से चयन प्रक्रिया अपना कर वर्ष 1998 में विकसित की गई समरूप फलों वाली इस किस्म के फल कम अवधि में तुड़ाई पर आते हैं एवं पहली तुड़ाई बुवाई के 75–78 दिन बाद प्रारम्भ हो जाती है। इनकी मध्यम वृद्धि वाली बेलें 3.5 से 4.0 मीटर तक लम्बी एवं फूल उभयलिंगाश्रयी होते हैं। एक बेल पर 3.0 से 3.5 पके फल सरलता से मिल जाते हैं जिससे औसत उपज 448 क्विंटल प्रति हेक्टयर तक प्राप्त की जा सकती है। फल बड़े व दीर्घायताकार होते हैं एवं छिलका चमकीला व हरी से गहरी हरी धारियों युक्त होता है। फलों की औसतन लम्बाई 30–33 सेमी. तथा परिधि 60–65 सेमी. एवं भार 3.75–4.50 किलोग्राम तक होता है। फलों में खाने योग्य पका गूदा 11.0–13.0 सेमी. व अखाद्य गूदा 1.4–1.5 सेमी. मोटा होता है। गूदे का रंग गहरा गुलाबी तथा ठोसपन मध्यम होता है एवं मिठास की मात्रा 8.0–8.2 प्रतिशत तक होती है। फलों में बड़े व भरे हुए खाकी रंग के बीज अधिक होते हैं।

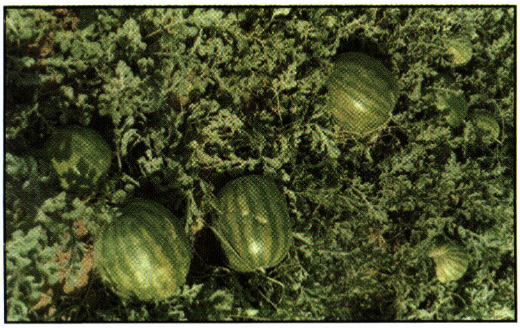

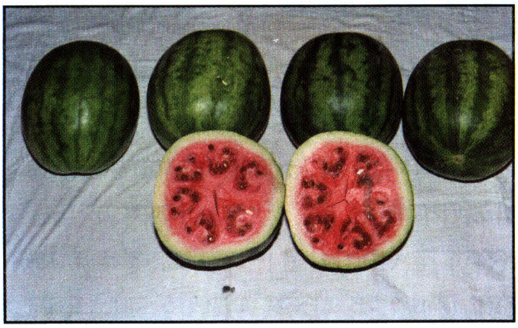

मतीरा एएचडब्ल्यू–19 किस्म की बेल एवं फल

मतीरा एएचडब्ल्यू–65

वर्ष 1998 में एक समान फलों के लिए विकसित की गई यह प्रजाति भी स्थानीय जननद्रव्यों में से चयनित अच्छी गुणवत्ता व अधिक उत्पादन देने वाली किस्म है। बेलों की लम्बाई 3.0 मीटर तक होती है तथा पु–उभयालिंगाश्रयी फूल आने से फल अधिक लगते हैं। इस किस्म से सब्जी हेतु कच्चे फल (लोइयाँ) अधिक लिए जा सकते हैं। बुवाई के 70–75 दिनों बाद पके फलों की तुड़ाई प्रारंभ हो जाती है। एक बेल पर 3–4 फल मिल जाने से, औसतन उपज 400 क्विंटल/हेक्टयर तक प्राप्त हो जाती है। फल गोल व हल्के हरे रंग की धारियों युक्त होते हैं

जिनका औसत भार 2.5–3.0 किलोग्राम तक होता है। फलों की लम्बाई 24–29 सेमी. एवं परिधि 58–61 सेमी. तक होती है। फलों में खाने योग्य भाग 14–15 सेमी. व अखाद्य भाग 1.5–1.7 सेमी. तक मोटा होता है। गूदे का रंग गुलाबी व ठोसपन मध्यम होता है तथा मिठास की मात्रा 8.0–8.5 प्रतिशत तक होती है। फलों में बड़े आकार के खाकी रंग के बीज अधिक मात्रा में होते हैं।

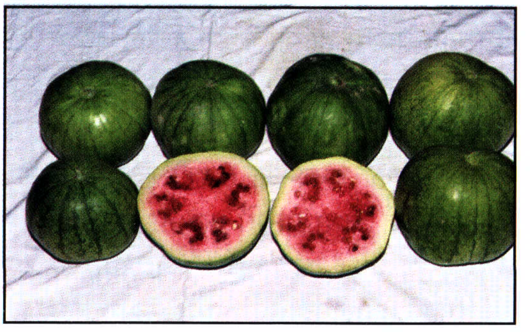

मतीरा एएचडब्ल्यू–65 किस्म की बेल एवं फल

मतीरा थार माणक

केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान ने वर्ष 2007 में तरबूज किस्मों के खाने योग्य गूदे जैसे गुणों वाली 'थार माणक' नामक किस्म विकसित की है। संस्थान में इस किस्म को मतीरे की किस्म एएचडब्ल्यू–19 व तरबूज की किस्म शुगर बेबी में संकरीकरण पश्चात् चयन प्रक्रिया द्वारा विकसित किया गया है। इस किस्म के फल बाहरी रूप से मतीरे के समान तथा आंतरिक भाग तरबूज के समतुल्य है। मध्यम आकृति के फल दिखने में सुंदर होते हैं तथा इनमें फटाव भी नहीं होता है। शुष्क क्षेत्रीय जलवायु को आधार बनाकर तैयार की गई इस किस्म की ग्रीष्म व वर्षाकालीन फसल के रूप में सफलतापूर्वक खेती कर इस क्षेत्र में भी अच्छी व निश्चित गुणवत्ता वाले मतीरों का व्यावसायिक उत्पादन किया जा सकता है।

इसमें पके फलों की पहली तुड़ाई बुवाई के 75 दिन बाद प्रारंभ हो जाती है। बेलें 2.65–3.12 मीटर लम्बाई की जिनमें 5–6 शाखाऐं होती हैं। एक बेल पर 2.6 से 4.2 तक विपणन योग्य पके फल तथा लगभग 10–14 किलोग्राम तक उपज मिल जाती है। अच्छी फसल व्यवस्था से 500–800 क्विंटल/हेक्टयर तक उत्पादन हो जाता है। बढ़िया आकृति लिये दीर्घायताकार गोल फलों का छिलका गहरी हरी रंग की धारियाँ युक्त चमकीला होता है। फलों का औसतन भार 2.5–4.2 किग्रा जिनकी औसतन लम्बाई 20–22 सेमी. एवं परिधि 58–62 सेमी. होती है। फलों में खाने योग्य गूदा 14–16 सेमी. व अखाद्य गूदा 1.3–1.6 सेमी. तक मोटा होता है। लाल रंग

का गूदा ठोस व रवेदार होता है तथा मिठास की मात्रा 9.5–11.2 प्रतिशत तक है। फल में बीज बड़े व काले रंग के होते हैं, परन्तु कम मात्रा में होते हैं।

मतीरा किस्म थार माणक की बेल एवं फल

मतीरा एएचडब्ल्यू आरएसएस–1

स्थानीय जननद्रव्यों में से शुद्धीकरण से विकसित लाईन एएचडब्ल्यू आरएसएस–1 को संस्थान ने फलों से अधिक मात्रा में बीज उत्पादन के लिए वर्ष 2012 में चयनित की है। इसके पके फलों की पहली तुड़ाई बुवाई के 80 दिन बाद प्रारम्भ हो जाती है। एक पौधे पर औसतन 3.0 फल मिलने से 23.0 किलोग्राम तक उपज प्राप्त हो जाती है। फल बड़े व दीर्घायताकार, जिनका छिलका हल्का हरा एवं बिना धारियों वाला होता है। औसतन 7 किग्रा. भार वाले फलों की लम्बाई 32 सेमी. तथा परिधी 68 सेमी. तक होती है। फलों का खाद्य योग्य गूदा 15.9 सेमी. एवं अखाद्य योग्य गूदा 2.5 सेमी. मोटा होता है। खाद्य योग्य गूदा ठोस परंतु सफेद रंग का होता है। एक फल में औसतन बीजों की संख्या 950–1120 तक होने से बीजों की उपज 295–335 ग्राम/पौधा प्राप्त हो जाती है। अच्छे भरे हुए बीज लाल रंग के होते हैं।

मतीरा में अधिक बीज पैदा करने वाली लाईन एएचडब्ल्यू आरएसएस–1 के फल

मतीरा एएचडब्ल्यू बीएसएम–1

मतीरे की नवविकसित लाईन एएचडब्ल्यू बीएसएम–1 का चयन अचानक उत्परिवर्तन प्रक्रिया से हुआ है जो कि मतीरा किस्म एएचडब्ल्यू–19 के बीज उत्पादन वाली फसल से एक पौधे के फलों में पाए गए काले रंग के बीजों एवं अच्छी गुणवत्ता के आधार पर वर्ष 2005 से इसकी संततियों की सतत जांच के फलस्वरूप वर्ष 2012 में इसे एक बहुपयोगी लाईन के रूप में चयनित किया गया है। इसमें पके फलों की पहली तुड़ाई बुवाई के 80 दिन बाद प्रारम्भ हो जाती है तथा एक पौधे पर औसतन 2.5 फल मिलने से 11.0 किलोग्राम उपज प्राप्त हो जाती है।

मध्यम आकार के फल, दीर्घायताकार जिन पर हरी व गहरी हरी धारियां होती हैं। फल का औसतन भार 4.40 किग्रा जिनकी लम्बाई 22.4 सेमी. तथा परिधी 61.6 सेमी. तक होती है। फलों का खाद्य योग्य गूदा 16.8 सेमी. एवं अखाद्य योग्य गूदा 1.2 सेमी. मोटा होता है। खाने योग्य गूदा मध्यम ठोस व गुलाबी रंग का होता है। एक फल में औसतन बीजों की संख्या 891 तक होने से बीजों की उपज 214 ग्राम/पौधा प्राप्त हो जाती है। अच्छे भरे हुए बीज काले रंग के होते हैं।

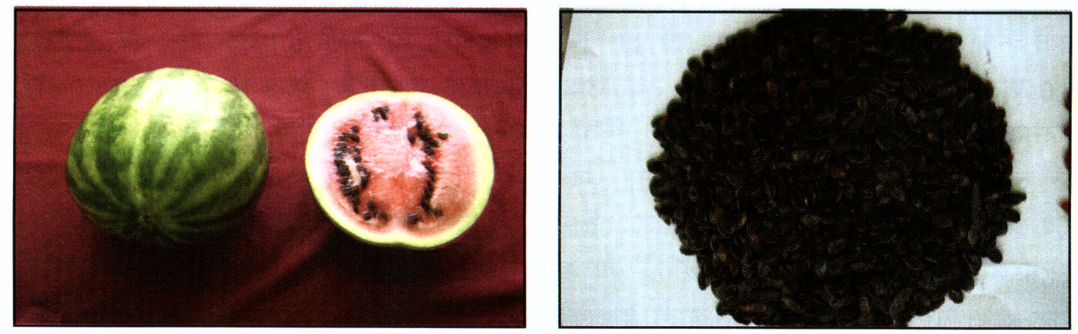

मतीरा में अच्छी गुणवत्ता के साथ अधिक बीज पैदा करने वाली लाईन एएचडब्ल्यू बीएसएम–1 के फल

प्रतिकूल जलवायु में प्रक्षेत्र प्रबन्धन तकनीक

राजस्थान के शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्र की जलवायु में मतीरा एक बहुपयोगी एवं नगदी फसल है। इन क्षेत्रों में मतीरे की खेती ग्रीष्म व वर्षाकालीन दोनों फसलों के रूप में लाभप्रद है। इसकी सफल खेती के लिए यहाँ की वातावरणीय रुकावटें जैसे लम्बी समयावधि तक अत्यधिक तापमान, गर्म लू के थपेड़े, अत्यधिक वाष्पीकरण, धूल भरी आंधियाँ आदि के प्रकोप से फसल को बचाने एवं अधिक गुणवत्ता युक्त फल उत्पादन के लिए सुरक्षा तथा प्रबंधन कार्य जरूरी है। तेज आंधियाँ आने से खेत की बालू मिट्टी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जमा हो जाने से दोनों ही स्थानों की उर्वरा शक्ति कमजोर पड़ जाती है जिसका प्रभाव फसल पर पड़ता है। रेतीली मिट्टी

के बारीक गर्म कण कोमल पत्तियों, फूलों व नव विकसित फलों को काफी नुकसान पहुँचाते हैं। मरूप्रदेश में मार्च से अक्टूबर माह तक लगातार अत्यधिक तापमान (35–48 डिग्री सेल्सियस) व वातावरण में शुष्कता रहने से भूमि व पौधों से अत्यधिक मात्रा में पानी वाष्पित होता है जिससे फसल पर विपरीत प्रभाव पड़ता है तथा फलों का जमाव कम व छोटे फल खराब हो जाते हैं। यहाँ की वातावरणीय विपरीत परिस्थितियों के कारण तरबूज की किस्मों के फलों में फटाव भी अधिक होता है जिससे प्रति पौधा विपणन योग्य फलों की संख्या में भारी गिरावट आ जाती है।

इस प्रतिकूल जलवायु वाली स्थिति में फसल सुरक्षा हेतु प्रक्षेत्र/खेत में अनुकूल वातावरण तैयार करना तथा पौधों में उचित वानस्पतिक विकास, फल जमाव एवं गुणवत्ता युक्त उत्पादन हेतु प्रक्षेत्र प्रबन्धन अपनाना आवश्यक है। मरूक्षेत्र में इस कार्य के लिए संस्थान में एक ऐसी सुनियोजित योजना का सृजन किया है जिसको "बागवानी आधारित फसल उत्पादन प्रक्षेत्र प्रबन्धन (Horticulture based crop production site management approach, HBCPSMA)" नाम दिया है। संस्थान द्वारा वर्ष 2012 तक सब्जियों की व्यवस्थित खेती के लिए इस तरह की फसल उत्पादन व्यवस्था में निम्नलिखित बिन्दुओं में वैज्ञानिक तकनीकों का समावेश क्षेत्रीय जलवायु के अनुरूप लाभप्रद सिद्ध हो सकता है।

1. प्रक्षेत्र के चारों ओर स्थानीय प्रजाति के बहुपयोगी पेड़–पौधों व झाड़ियों का समावेश कर वायुरोधी पट्टिकाओं का सुनियोजित ढंग से विकास करना, जिससे फसल उत्पादन सम्बन्धी अनुकूल वातावरण तैयार किया जा सकता है। इसमें प्रक्षेत्र के चारों ओर बाड़ी या तार बंदी भी एक आवश्यक व अनिवार्य आधार है।

2. बागवानी में खेजड़ी आधारित फसल उत्पादन प्रक्षेत्र प्रबन्धन को अपनाना, प्रक्षेत्र में उपयुक्त खेत का चुनाव एवं चयनित फसलों की उन्नत किस्मों का उपयोग।

3. वर्षा जल संग्रहण, नमी संरक्षण तथा सिंचाई प्रबन्धन पर विशेष व्यवस्था एवं मृदा संरक्षण व स्वास्थ्य हेतु उपयुक्त फसलों का चुनाव, संतुलित खाद–उर्वरकों का प्रयोग तथा फसलों के मध्य की भूमि पर पलवार के रूप में स्थानीय घास–फूस को प्राथमिकता देना।

4. वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाकर फसल उत्पादन एवं उत्पाद प्रबन्धन कार्य करना।

5. प्रतिकूल जलवायु के कारकों, जंगली जानवरों, पक्षियों तथा कीड़ों व बीमारियों से बचाव हेतु समेकित फसल सुरक्षा प्रबन्धन को अपनाना।

सारणी 4: शुष्क क्षेत्रीय जलवायु में मतीरे के प्रमुख जननद्रव्यों में वानस्पतिक वृद्धि, फल उपज एवं गुणवत्ता के लक्षण (वर्ष 1996 की ग्रीष्म व वर्षा कालीन फसल का औसत)।

जननद्रव्य	प्रथम मादा फूल खिलने में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	फल जमाव की संख्या/पौधा	प्रथम फल तुड़ाई में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	विपणन योग्य फलों की संख्या/पौधा	फल का वजन (किग्रा.)	फल की लंबाई (सेमी.)	फल की परिधि (सेमी.)	खाने योग्य गूदे की मोटाई (सेमी.)	अखाद्य गूदे की मोटाई (सेमी.)	टीएसएस (डिग्री ब्रिक्स)	बेल की लंबाई (मीटर)	शाखाओं की संख्या/पौधा	गूदे का रंग*	गूदे के ठोसपन की श्रेणी*
एएचडब्ल्यू–01	49.78	6.86	93.35	2.63	5.23	40.83	61.68	16.32	2.36	7.22	4.20	6.46	LP	B
एएचडब्ल्यू–12	55.42	4.53	96.83	2.11	3.48	28.38	61.55	12.56	1.77	7.02	2.52	4.27	LP	B
एएचडब्ल्यू–16	53.42	7.76	90.54	3.70	4.23	28.72	58.42	14.38	2.05	7.51	2.55	4.52	P	A
एएचडब्ल्यू–18	48.46	8.83	82.37	4.84	4.16	30.52	61.65	14.51	1.82	8.04	4.52	6.24	DP	A
एएचडब्ल्यू–19	47.87	8.60	80.50	4.59	3.93	35.65	59.58	12.46	1.60	8.44	3.01	5.55	DP	A
एएचडब्ल्यू–20	50.46	5.50	87.46	3.08	3.13	34.34	55.58	14.22	1.72	5.45	2.17	4.25	LP	A
एएचडब्ल्यू–65	44.15	9.91	78.05	5.26	2.83	28.97	55.55	13.23	1.73	8.22	2.56	5.61	P	A
एएचडब्ल्यू–73	45.16	7.63	88.44	4.57	3.75	31.77	55.44	10.64	2.24	6.41	3.56	5.46	LP	B
एएचडब्ल्यू–82	47.28	7.44	88.11	3.16	5.22	34.39	70.90	16.04	2.28	7.77	3.11	6.14	P	B
एएचडब्ल्यू–85	44.79	7.46	90.39	4.24	4.52	33.45	67.27	12.14	2.56	7.52	3.23	5.23	LP	B
एएचडब्ल्यू–108	46.47	8.36	86.96	4.12	3.48	28.71	55.38	12.81	1.63	8.06	4.13	6.19	DP	A
एएचडब्ल्यू–118	48.51	6.73	88.41	4.09	4.08	30.91	62.08	14.23	1.81	7.81	3.13	5.27	DP	A
एएचडब्ल्यू–120	48.91	6.60	88.12	4.44	4.23	34.09	64.24	15.18	1.80	7.63	3.24	6.20	P	A
एएचडब्ल्यू–123	49.36	6.77	86.55	4.07	4.84	33.40	68.00	12.44	2.83	6.08	2.84	6.35	LP	B
एएचडब्ल्यू–140	49.84	8.25	89.77	4.08	4.09	35.74	58.23	12.37	2.07	7.20	3.28	5.25	LP	B
शुगर बेबी	74.20	5.19	103.70	1.14	2.83	25.41	61.05	15.61	1.47	9.24	3.22	5.21	R	AA
दुर्गापुरा मीठा	70.17	6.13	104.29	1.42	3.42	24.60	68.57	14.59	2.10	9.35	3.76	5.53	R	AA
औसत	51.43	7.21	89.64	3.62	3.97	31.70	61.48	13.75	1.99	7.58	3.24	5.51		
सीवी (%)	1.8	4.9	1.3	4.2	3.8	1.7	1.1	2.0	4.2	1.2	4.1	1.9		
सीडी (5%)	1.57	0.59	1.88	0.25	0.25	0.90	1.12	0.44	0.13	0.14	0.22	0.17		

*यहां P–गुलाबी, DP–गहरा गुलाबी, LP–हल्का गुलाबी एवं R–लाल रंग का गूदा तथा A–ठोस, B–कम ठोस व AA–अधिक ठोस वाला गूदा

सारणी 5: शुष्क क्षेत्रीय जलवायु में मतीरा व तरबूज की किस्मों का सिंचित फसल के रूप में अध्ययन (वर्ष 1996 व 1997 की ग्रीष्मकालीन फसल का औसत)।

किस्में	प्रथम मादा फूल खिलने में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	फल जमाव की संख्या /पौधा	प्रथम फल तुड़ाई में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	विपणन योग्य फलों की संख्या /पौधा	फल का वजन (किग्रा.)	टीएसएस (डिग्री ब्रिक्स)	बेल की लंबाई (मीटर)	शाखाओं की संख्या /पौधा	गूदे का रंग	गूदे का ठोसपन	फटे फलों की संख्या /पौधा
दुर्गापुरा मीठा	53.78	5.83	99.15	2.06	3.98	9.03	3.90	5.23	लाल	ठोस	1.42
शुगर बेबी	57.40	5.60	98.61	1.50	2.53	9.46	3.05	4.20	लाल	ठोस	1.51
अर्का मनिक	58.37	6.73	88.15	1.85	4.04	8.30	3.34	6.00	गहरा गुलाबी	कम ठोस	1.33
अर्का ज्योति	51.68	8.53	86.38	1.86	4.12	8.96	3.07	5.97	लाल	ठोस	1.61
एमएचडब्ल्यू–11	52.02	6.43	84.72	2.23	5.42	8.33	3.29	4.94	गहरा गुलाबी	ठोस	1.25
एनएचडब्ल्यू–102	56.72	8.94	84.81	2.13	5.22	8.50	3.32	6.30	गहरा गुलाबी	ठोस	1.32
एएचडब्ल्यू–18	48.11	7.63	83.20	4.10	4.64	8.06	4.00	5.33	गुलाबी	कम ठोस	0.00
एएचडब्ल्यू–19	44.08	8.86	79.91	4.30	3.93	8.33	3.35	5.46	गहरा गुलाबी	कम ठोस	0.00
एएचडब्ल्यू–65	42.16	9.98	74.74	5.10	3.00	8.37	3.18	6.17	गुलाबी	कम ठोस	0.00
औसत	51.59	7.61	86.63	2.79	4.10	8.59	3.39	5.51	–	–	–
सीवी (%)	1.9	5.2	1.5	6.4	3.9	2.3	5.5	3.2	–	–	–
सीडी (5%)	1.71	0.68	2.27	0.31	0.28	0.34	0.32	0.30	–	–	–

सारणी 6: शुष्क क्षेत्रीय जलवायु में मतीरा व तरबूज की किस्मों का बाड़ी विधि से वर्षा आधारित फसल के रूप में अध्ययन (वर्ष 1996 व 1997 की फसलों का औसत)।

किस्में	प्रथम मादा फूल खिलने में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	मादा फूलों की संख्या/पौधा	बेल की लंबाई (मीटर)	शाखाओं की संख्या/पौधा	फल जमाव की संख्या/पौधा	कच्चे फलों की संख्या/पौधा (लोइया) (ग्राम)	विपणन योग्य फलों की संख्या/पौधा	विपणन योग्य फलों की उपज/पौधा (किग्रा.)
दुर्गापुरा मीठा	65.02	4.15	1.41	2.59	–	–	–	–
शुगर बेबी	68.15	4.49	1.56	2.49	–	–	–	–
अर्का मनिक	84.21	2.28	1.76	3.01	–	–	–	–
अर्का ज्योति	88.09	1.27	1.40	2.14	–	–	–	–
एमएचडब्ल्यू–11	77.15	3.47	1.42	3.08	–	–	–	–
एनएचडब्ल्यू–102	74.08	3.37	1.51	2.99	–	–	–	–
एएचडब्ल्यू–18	44.35	13.91	4.13	5.25	6.5	155.48	2.62	6.15
एएचडब्ल्यू–19	46.03	14.57	4.24	4.57	6.5	185.61	2.94	7.35
एएचडब्ल्यू–65	43.47	15.60	3.06	5.31	7.5	215.65	3.15	8.55
औसत	65.56	7.01	2.28	3.49	–	–	–	–
सीवी (%)	1.7	5.6	4.2	4.9	–	–	–	–
सीडी (5%)	1.96	0.68	0.16	0.29	–	–	–	–

सारणी 7: शुष्क क्षेत्रीय जलवायु में मतीरा व तरबूज किस्मों से विकसित की गई कुछ संकर (F_1) व पैतृक लाईनों का अध्ययन (वर्ष 1999 की वर्षाकालीन एवं वर्ष 2000 की ग्रीष्मकालीन फसलों का औसत)।

किस्में	प्रथम मादा फूल खिलने में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	प्रथम फल तुड़ाई में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	विपणन योग्य फलों की संख्या/पौधा	फल का वजन (किग्रा.)	फल की लंबाई (सेमी.)	फल की परिधी (सेमी.)	टीएसएस (डिग्री ब्रिक्स)	गूदे का रंग	गूदे का ठोसपन
मतीरा एएचडब्ल्यू–19	46.02	77.00	3.82	3.84	27.86	67.31	8.06	गहरा गुलाबी	कम ठोस
मतीरा एएचडब्ल्यू–65	43.33	75.06	4.94	2.90	21.38	59.38	8.09	गुलाबी	कम ठोस
चारलेस्टन	79.02	116.66	1.24	3.25	32.51	56.42	8.18	लाल	ठोस
महबोबी	84.33	115.00	1.54	2.79	26.41	59.42	8.12	गहरा गुलाबी	ठोस
शुगर बेबी	72.66	102.16	1.44	2.89	26.42	61.88	9.21	लाल	ठोस
दुर्गापुरा मीठा	69.05	101.20	1.69	3.44	28.54	69.32	9.45	लाल	ठोस
मतीरा एएचडब्ल्यू–19 x शुगर बेबी	54.25	95.66	5.04	3.86	29.29	60.45	5.13	गहरा लाल	ठोस
मतीरा एएचडब्ल्यू–19 x चारलेस्टन	50.12	95.12	5.13	3.27	31.98	60.98	8.20	लाल	ठोस
मतीरा एएचडब्ल्यू–65 x शुगर बेबी	57.12	100.33	4.12	3.53	27.74	62.20	6.23	लाल	ठोस
मतीरा एएचडब्ल्यू–65 x चारलेस्टन	54.66	98.73	6.04	2.89	27.88	56.23	8.42	लाल	ठोस
औसत	61.03	97.67	3.50	3.26	28.02	61.36	7.91	–	–
सीवी (%)	1.9	1.5	1.9	2.3	1.6	1.2	0.9	–	–
सीडी (5%)	2.02	2.54	0.11	0.13	0.77	1.25	0.13	–	–

सारणी 8: मतीरे की सूखा सहिष्णु किस्मों के तुलनात्मक लक्षण (वर्ष 1997 से 1999 तक की ग्रीष्म व वर्षाकालीन फसल प्रदर्शन के आधार पर)।

लक्षण	एएचडब्ल्यू–19	एएचडब्ल्यू–65
प्रथम मादा फूल खिलने में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	48	43
प्रथम मादा फूल खिलने की पौधे पर गांठ संख्या	6.1	5.0
प्रथम फल तुड़ाई में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	77	72
विपणन योग्य फलों की संख्या/पौधा	3.3	4.0
फल उपज/पौधा (किग्रा.)	11.5	9.2
फल उपज (क्वि./है.)	449	394
फल का वजन (किग्रा.)	3.75	2.80
फल की लंबाई (सेमी.)	32.3	26.8
फल की परिधी (सेमी.)	62.5	59.7
खाने योग्य गूदे की मोटाई (सेमी.)	12.6	14.5
अखाद्य गूदे की मोटाई (सेमी.)	1.5	1.6
टीएसएस (डिग्री ब्रिक्स)	8.2	8.2
बेल की लंबाई (मीटर)	3.8	3.1
शाखाओं की संख्या/पौधा	4.5	5.1

सारणी 9: मतीरे की सूखा सहिष्णु किस्मों में फल उपज का वृहद स्तर पर आंकलन (ग्रीष्म व वर्षा ऋतु की फसल के औसत आधार पर)।

वर्ष	एएचडब्ल्यू–19		एएचडब्ल्यू–65	
	फल संख्या/पौधा	फल उपज (क्वि./है.)	फल संख्या/पौधा	फल उपज (क्वि./है.)
1996	3.35	432	3.70	382
1997	3.20	460	4.00	398
1998	3.45	486	3.95	401
1999	3.30	455	3.95	394
2000	3.20	425	4.25	390
2001	3.30	435	4.20	397
औसत	**3.3**	**448.8**	**4.0**	**393.8**

सारणी 10: मतीरा व तरबूज की किस्मों के लक्षणों का वृहद् स्तर पर तुलनात्मक आंकलन (वर्ष 2005 से 2007 की ग्रीष्म व वर्षा ऋतु में फसल परीक्षण के आधार पर औसत)।

लक्षण	पैतृक किस्में		विकसित किस्म
	एएचडब्ल्यू–19	शुगर बेबी	थार माणक
प्रथम मादा फूल खिलने में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	44.5	55.2	38.5
प्रथम मादा फूल खिलने की पौधे पर गांठ संख्या	7.1	14.2	12.7
प्रथम फल तुड़ाई में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	76.5	97.5	75.5
विपणन योग्य फलों की संख्या/पौधा	4.29	1.14	3.45
विपणन योग्य फल उपज/पौधा (किग्रा.)	16.54	3.22	12.15
फल का वजन (किग्रा.)	3.85	2.83	3.25
फल की लंबाई (सेमी.)	35.5	24.1	22.5
फल की परिधी (सेमी.)	58.8	60.2	58.5
खाने योग्य गूदे की मोटाई (सेमी.)	13.4	15.1	16.8
अखाद्य गूदे की मोटाई (सेमी.)	1.95	1.51	1.61
टीएसएस (डिग्री ब्रिक्स)	8.12	10.15	10.82
फलों की पहचान	दीर्घायताकार फल जिन पर गहरी हरी–हरी स्पष्ट धारियां। फल नहीं फटते।	गोल फल जिन पर गहरी हरी–हरी अस्पष्ट धारियां। अत्यधिक फल फटाव।	दीर्घायताकार–गोल फल जिन पर गहरी–हरी हरी स्पष्ट धारियां। फल नहीं फटते।
फलों के गूदे की पहचान	गुलाबी, व मध्यम ठोस	लाल व ठोस	लाल व ठोस
बीजों की पहचान	खाकी रंग व मध्यम आकार के बीज अधिक मात्रा में।	चितकबरे व छोटे आकार के बीज अधिक मात्रा में।	काला रंग व बड़े आकार के बीज कम मात्रा में।

सारणी 11: मतीरे की सूखा सहिष्णु विशिष्ट लक्षणों के लिए चयनित लाईनों का अध्ययन (वर्ष 2010 व 2011 का औसत)।

लक्षण	एएचडब्ल्यू आरएसएस–1	एएचडब्ल्यू बीएसएम–1
प्रथम नर फूल खिलने में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	40.5	43.3
प्रथम नर फूल खिलने की पौधे पर गांठ संख्या	3.2	5.2
प्रथम मादा फूल खिलने में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	49.2	49.7
प्रथम मादा फूल खिलने की पौधे पर गांठ संख्या	6.5	7.5
प्रथम फल तुड़ाई में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	79.6	79.8
बेल की लंबाई (मीटर)	2.5	2.2
विपणन योग्य फलों की संख्या / पौधा	3.0	2.5
विपणन योग्य फल उपज / पौधा (किग्रा.)	23.7	11.0
फल का वजन (किग्रा.)	7.90	4.40
फल की लंबाई (सेमी.)	32.2	22.4
फल की परिधी (सेमी.)	68.5	61.6
टीएसएस (डिग्री ब्रिक्स)	8.0	10.5
खाने योग्य गूदे की मोटाई (सेमी.)	15.9	16.8
अखाद्य गूदे की मोटाई (सेमी.)	2.5	1.2
बीजों की संख्या / फल	1119.5	891.5
बीज का वजन / फल (ग्राम)	117.5	71.8
बीज उपज / पौधा (ग्राम)	350.5	214.5
100 बीजों का वजन (ग्राम)	9.8	8.1
बीज की लंबाई (सेमी.)	1.18	1.16
बीज की चौड़ाई (सेमी.)	0.76	0.68
बीज की मोटाई (सेमी.)	0.19	0.19
गूदे का रंग	सफेद	गहरा गुलाबी
गूदे के ठोसपन की श्रेणी	ए	बी
बीज का रंग	लाल	काला

जलवायु

गर्म व शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों के लिये मतीरा उपयुक्त फसल है। पौधों में अच्छी बढ़वार व फलन के लिए 30–35 डिग्री सेल्सियस तापमान सर्वोत्तम है। बीजों में अंकुरण व नवांकुरों का जमाव एवं वृद्धि औसतन 20–22 डिग्री सेल्सियस तापमान में अच्छी होती है। सर्दियों में न्यूनतम तापमान व पाले की स्थिति फसल के लिए प्रतिकूल होती है। देश के उत्तर–पश्चिमी शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में इसकी ग्रीष्म व वर्षाकालीन फसल के रूप में सफलतापूर्वक खेती की जा सकती है। मरुक्षेत्र में सितम्बर–अक्टूबर के महीनों में तापमान 35–40 डिग्री सेल्सियस तथा वातावरण में आर्द्रता कम रहने से जुलाई माह में बुवाई कर वर्षाकालीन फसल के रूप में खेती की जाती है क्योंकि यहां मौसम में शुष्कता रहने से फलों में उत्तम गुणवत्ता एवं अधिक मिठास विकसित होती है। फसल में फल पकते समय अधिक वर्षा हानिकारक है एवं पकने वाले फलों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ग्रीष्मकालीन फसल में जब मई–जून के महीने में तापमान लगातार 45 डिग्री सेल्सियस से ऊपर रहने पर फसल लू के थपेड़ों से झुलस जाती है जिससे फलोत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

भूमि

व्यवस्थित एवं लाभप्रद खेती के लिए पानी के अच्छे निकास वाली बलुई दोमट भूमि एवं मरूस्थलीय खेतों की रेतीली मिट्टी सर्वोत्तम है। रेतीली व बालू मिट्टी वाले खेतों में मतीरे की फसल शीघ्रता से तैयार होती है। खेत की मृदा का पी. एच. मान 6.0 से 8.5 तक मतीरे के लिए उपयुक्त रहता है। तेज आंधियों में खेत की ऊपरी उपजाऊ मिट्टी एक स्थान से उड़कर दूसरे स्थान पर जम जाने से खेत की उर्वरा शक्ति कमजोर पड़ जाती है। फसल में बढ़िया वानस्पतिक वृद्धि एवं उपज के लिए खेत में पर्याप्त जीवांश की मात्रा होना आवश्यक है।

प्रक्षेत्र/खेत की तैयारी

हमारे देश के मरूस्थलीय क्षेत्रों में मतीरे की फसल वर्षा आधारित मिश्रित खेती के रूप में तथा ग्रीष्म ऋतु में बाड़ी विधि अपनाकर की जाती है। दूसरी ओर अर्द्धशुष्क व अच्छी जलवायु वाले प्रदेशों में इसकी खेती नदियों के पाटों अथवा समतल खेतों में की जाती है। नदियों के पाटों में वर्षा ऋतु समाप्त होने के बाद छोटे–छोटे खेत बनाकर उनमें छोटे–बड़े कुण्ड व मेड़े बनाकर तैयार किये जाते हैं एवं दिसम्बर माह में मिश्रित फसल के रूप में मतीरा/तरबूज की बुवाई की जाती है। ग्रीष्मकालीन व्यावसायिक फसल के लिए समुचित सिंचाई प्रबंधन एवं अच्छी जीवांश खाद वाले समतल खेत का चुनाव करना चाहिए।

राजस्थान के शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में मतीरे की सफल खेती हेतु प्रक्षेत्र का चुनाव एवं उसकी तैयारी पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। शुष्क क्षेत्र की जलवायु अत्यधिक कठोर है एवं यहाँ तापमान भी अधिक रहता है। अत्यधिक गर्मी के प्रभाव से खेतों की रेतीली या बलुई दोमट मिट्टी जल्दी सूख जाती है। ग्रीष्मकाल में तेज हवाएँ चलने के कारण उपजाऊ मिट्टी एक स्थान से उड़ कर दूसरे स्थान पर चली जाती है जिससे खेत की उर्वरा शक्ति प्रभावित होती है। इसलिए यहाँ अच्छी उत्पादकता के लिए प्रक्षेत्र प्रबन्धन की योजना अपना कर फसल उत्पादन कार्य करने की आवश्यकता है। बागवानी में सब्जी उत्पादन के लिए ऐसी योजनाओं को अपनाना चाहिए जिससे प्रक्षेत्र में अधिक उत्पादन के लिए अनुकूल वातावरण तैयार हो सके। वातावरणीय प्रकोप जैसे अत्यधिक तापमान, तेज धूप, गर्म 'लू' के थपेड़ों एवं धूल भरी आंधियों के प्रकोप से फसलों को बचाने के लिए खेत में उचित प्रकार के स्थानीय पेड़–पौधों (खेजड़ी, रोहिडा, लसोड़ा, कुमट, केर, झरबेर, फोग, खींप आदि) को व्यवस्थित ढंग से लगाकर खेत/प्रक्षेत्र में एकल या दोहरी बहुमंजिला बाड़/वायुरोधी पट्टिकाओं का विकास करना आवश्यक है। फसल व वातावरण को अनुकूल बनाने वाले पेड़–पौधों को जंगली जानवरों से बचाने के लिए प्रक्षेत्र के चारों ओर बाड़ी या तार बंदी करना अत्यंत आवश्यक है। इसी तरह खेत में वर्षा जल संग्रहण एवं मृदा संरक्षण के उपायों को नियोजिन ढ़ंग से अपनाना जरूरी है।

मतीरे की वर्षाकालीन फसल के लिए खेत की पहली जुताई जून के अंतिम सप्ताह में करने से मानसून आगमन के साथ तैयार खेत में बुवाई जुलाई में की जा सके। इसी तरह ग्रीष्मकालीन फसल उत्पादन के लिए खेत को दिसम्बर–जनवरी के महीने में गहरी जुताई कर खाली छोड़ देना चाहिए जिससे सर्द ऋतु में होने वाली वर्षा (मावठ) का पानी खेत में ही संग्रहित हो सके। फरवरी के पहले सप्ताह में खेत को दो बार हैरो से जुताई कर पाटा लगाकर बुवाई हेतु तैयार कर देना चाहिए। खेत की अंतिम जुताई के पहले 200–250 क्विंटल/हेक्टेयर की दर से गोबर की सड़ी खाद बिखेरें। फसल को दीमक व अन्य भूमिगत कीड़ों से बचाने के लिए मिथाइल पेराथियान (2%) या एन्डोसल्फान (4%) दवा का 25 किलोग्राम पाउडर खेत में पाटा लगाने से पहले भुरक कर भूमि में मिला देना चाहिए। इस तरह तैयार खेत में क्यारी, कुण्ड, नाली या बूंद–बूंद विधि अपनाकर फसल उत्पादन करें।

खाद व उर्वरक

समेकित खाद व उर्वरक प्रबन्धन द्वारा एक ओर जहाँ मतीरे में अच्छी बढ़वार व फलन सम्भव है वहीं दूसरी ओर खेत की उत्पादक क्षमता सुव्यवस्थित रखी जा सकती है। रेतीले व बालू मिट्टी वाले खेतों में मृदा की उर्वरा शक्ति बनाए रखने के लिए प्रति वर्ष 200–250 क्विंटल गोबर की सड़ी खाद या 5–6 ट्रेक्टर–ट्रॉली भेड़–बकरियों की मींगनी की खाद प्रति हेक्टेयर अवश्य

दें। इसके अतिरिक्त व्यवस्थित ढंग से खेती के लिए 80 किलोग्राम नाइट्रोजन व 40–50 किलोग्राम फॉस्फोरस व पोटाश उर्वरक के रूप में प्रति हेक्टेयर की दर से देना चाहिए। इन तत्वों की आपूर्ति के लिये 80 किलोग्राम डाईअमोनियम फास्फेट, 100 किलोग्राम अमोनियम सल्फेट व 80 किलोग्राम म्यूरेट आफ पोटाश को प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग में लिया जा सकता है।

नाइट्रोजन की आधी मात्रा एवं फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई हेतु प्रारम्भिक तैयारियाँ जिसमें क्यारियाँ अथवा नालियाँ बनावें, उसी समय देवें, जिससे उर्वरकों का उचित लाभ फसल को मिल सके। नाइट्रोजन की शेष मात्रा को यूरिया के रूप में 2 से 3 भागों में बाँट कर देना चाहिए। इसके लिए 40–50 किलोग्राम यूरिया का भुरकाव बुवाई के 30–35 दिनों बाद करें जब बेलों का फैलाव एवं नर फूलों का आना प्रारम्भ हो तथा 50 किलोग्राम यूरिया बुवाई के 45–50 दिन बाद जब पौधों में फल जमाव प्रारम्भ होता है, तब देना अधिक लाभदायक होता है। यूरिया का भुरकाव करते समय ध्यान रखें कि खेत में पर्याप्त नमी हो अथवा सिंचाई करने के तुरन्त पश्चात् यूरिया का भुरकाव करें। नाली अथवा कुण्ड विधि से बोई गई फसलों में सिंचाई के तुरंत बाद ही नालियों अथवा कुण्डों में यूरिया का भुरकाव करें। वर्षा ऋतु में बरसात के दिन यूरिया का भुरकाव करना ठीक रहता है।

अच्छी वानस्पतिक वृद्धि के लिए फसल की बुवाई के 30–35 एवं 45–50 दिनों बाद यूरिया के 2 प्रतिशत घोल का छिड़काव भी उपयोगी है। बारानी क्षेत्रों की फसल में नाइट्रोजन की आपूर्ति के लिए 2 प्रतिशत यूरिया (20 ग्राम/लीटर) का 300–700 लीटर पानी का घोल एक हेक्टेयर में छिड़काव करना लाभदायक रहता है। बूंद–बूंद प्रणाली से खेती करने पर यूरिया का उपयोग 4–6 भागों में विभक्त कर 10–12 दिनों के अंतराल पर सिंचाई के साथ करना लाभदायक रहता है।

बुवाई का समय

मरूस्थलीय क्षेत्र में मतीरे की बुवाई वर्षा प्रारंभ होने के साथ ही मध्य जून से लेकर जुलाई के अन्त तक की जा सकती है। सिंचाई की सुविधा होने पर ग्रीष्मकालीन फसल की बुवाई 15 फरवरी से 15 मार्च तक तथा वर्षा ऋतु की फसल हेतु 15 जून से 15 जुलाई तक बुवाई कर देनी चाहिए। शुष्क क्षेत्र की जलवायु को एक उपयोगी संसाधन के रूप में अपनाते हुए सीमित सिंचाई जल व्यवस्था एवं फसल उत्पादन प्रबन्धन द्वारा फरवरी–मार्च एवं जून–जुलाई में मतीरे की योजनाबद्ध बुवाई कर अप्रैल से अक्टूबर तक बाजार में फलों की उपलब्धता बनायी रखी जा सकती है।

मरूस्थलीय क्षेत्र में जहाँ 15 दिसम्बर से 15 जनवरी तक अत्यधिक ठंड (<4^0 C) व 15 मई पश्चात् प्रचण्ड गर्मी का प्रकोप होता है ऐसी स्थिति में पॉलीथीन से ढकी नर्सरी में प्लास्टिक के कप/थैलियों में जनवरी माह में मतीरे की बुवाई की जा सकती है तथा 15–21 दिन के पौधों को फरवरी माह के प्रथम सप्ताह में खेत में बूंद–बूंद प्रणाली से खेती कर अगेती फसल ली जा सकती है।

बीज की मात्रा

मतीरे की बुवाई के लिए बीज की मात्रा किस्म, अंकुरण क्षमता, बुवाई की विधि, समय एवं क्षेत्रीय जलवायु पर निर्भर करती है। फसल से अच्छी पैदावार के लिए खेत में पर्याप्त मात्रा में पौधों की संख्या का होना आवश्यक है। कुण्ड, नाली या क्यारी विधि से बुवाई करने पर 2.5 से 4.0 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त रहेगा। खेत में फसल बुवाई के 15–20 दिनों तक जंगली छिपकली, गिलहरी एवं पक्षियों का बीजों एवं नवांकुरों पर अत्यधिक आक्रमण होता है अतः एक बुवाई स्थल पर 3–4 स्वस्थ बीजों की बुवाई करनी चाहिए। बुवाई के 18–21 दिनों बाद जब उनमें 2–4 वास्तविक पत्तियाँ आ जाऐं तब प्रत्येक बुवाई स्थल पर 1 या 2 स्वस्थ पौधे रख कर शेष निकाल देने चाहिए।

बीज का चयन एवं उपचार

अच्छी पैदावार के लिए क्षेत्रीय जलवायु को ध्यान में रखकर उन्नत किस्मों के स्वस्थ एवं अच्छी अंकुरण क्षमता वाले बीजों को काम में लेना चाहिए। मतीरे की किस्मों का चयन फसल उत्पादन प्रणाली एवं सिंचाई जल संसाधन को ध्यान में रखकर करना चाहिए। बीजों की बुवाई से पहले कैप्टान, थाइरम या बैवेस्टिन नामक दवा में से किसी भी एक दवा से उपचारित अवश्य करें। एक किलोग्राम बीज को उपचारित करने के लिए 2 से 3 ग्राम दवा की मात्रा पर्याप्त है।

अच्छे एवं शीघ्र अंकुरण के लिए मतीरे के बीजों को बुवाई से पहले 4 से 6 घंटो तक पानी में डुबाकर रखें। एक अन्य विधि में मतीरे के बीजों को गर्म पानी में नमक (20 ग्राम/लीटर) के साथ डुबोते हैं, जब हल्के व थोथे बीज पानी की सतह पर आ जाए तब उनको अलग कर दें। इसके पश्चात् पानी के तले में बैठे बीजों को अलग कर टाट की गीली पोटली में बाँध लें। इस तैयार पोटली को रात भर गोबर की खाद के गड्ढे में या गड्ढा बना कर जमीन में गाड़ देवें। इस प्रकार बुवाई करने से बीजों में अंकुरण एवं जमाव अच्छा रहेगा।

फसल बुवाई की विधियाँ

मतीरे की फसल मुख्यतः बुवाई के तरीकों, वर्षा एवं सिंचाई जल प्रबंधन तथा उत्पादन प्रणालियों पर केन्द्रित होती है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में सामान्यतः इसकी खेती स्थानीय जलवायु

एवं उपलब्ध संसाधनों पर आधारित है। राजस्थान के शुष्क क्षेत्र में मतीरे की खेती वर्षा आधारित मिश्रित अथवा बाड़ी पद्धति से की जाती है, वहीं दूसरी ओर अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में वर्षा ऋतु के बाद नदियों के पाटों में खेती की जाती है। इसी तरह सिंचित क्षेत्रों में इसकी व्यवस्थित खेती क्यारी, नाली या कुंड विधि अपनाकर सिंचाई बहाव, फव्वारा या बूंद–बूंद पद्धति से कर फसल पैदा की जाती है।

(अ) नाली विधि

केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर में वर्ष 2000 से 2010 तक किये गये अनुसंधान कार्य के आधार पर वैज्ञानिक ढंग से मतीरे की खेती के लिए नाली विधि सर्वोतम है। इस विधि में पाटा लगा कर तैयार किए गए खेत में 1.5–2.0 मीटर दूरी के अंतराल पर 50–60 सेमी. चौड़ाई की हल्की–गहरी नालियाँ बना ली जाती हैं। नालियों की लम्बाई 20–25 मीटर तक ही सीमित रखनी चाहिए एवं उनको पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर ही बनावें। रेखांकन कर बनाई गई इन नालियों में खाद व उर्वरकों को अच्छी तरह से मिलाकर समतल कर दिया जाता है। नालियों के अंदर की उत्तरी ढलान के किनारे 50–50 सेमी. दूरी के प्रत्येक स्थल पर 3–4 बीजों की बुवाई करें। इस विधि से बुवाई करने के लिए 2.5 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त है। जब पौधे 18–21 दिनों के हों अथवा उनमें 2–4 वास्तविक पत्तियाँ आ जाए तब प्रत्येक बुवाई स्थल पर एक या दो स्वस्थ पौधे रखकर शेष को निकाल देवें। इसी तरह पौधे जब 30–35 दिनों के होने लगें तब उनको नालियों से बाहर बेल फैलने वाली जगह की ओर मोड़ देना चाहिए। बेल फैलने वाले 1.5–2.0 मीटर चौड़े क्षेत्र में घास–फूस की पलवार कर शुष्क क्षेत्रीय जलवायु में अच्छी फलन ली जा सकती है।

नाली विधि से खेती करने पर खाद, उर्वरक व सिंचाई जल इन्हीं नालियों में ही दिया जाता है जिससे संसाधनों की काफी बचत होती है। इस विधि से बुवाई करने पर पौधों की प्रारम्भिक अवस्था में देखभाल व निराई–गुड़ाई कार्य अच्छी तरह से किया जा सकता है। नालियों एवं इसके आस–पास के ढलान से वर्षा जल अधिक मात्रा में संग्रहण होता है जो फसल के लिए उपयोगी है। मतीरे में नाली विधि से खेती कर लगभग एक तिहाई खाद–उर्वरक, सिंचाई जल एवं मानव श्रम जैसे बहुमूल्य संसाधनों की बचत सम्भव है।

(ब) कुण्ड विधि

रेगिस्तानी क्षेत्रों में वर्षा आधारित खेती प्रायः उबड़–खाबड़ टीलों वाले खेतों में होती है। ऐसी स्थिति में कुण्ड विधि से बुवाई करना उचित है। मतीरे की एकल फसल के लिये 2–2 मीटर की दूरी के अंतराल पर देशी हल से गहरे कुण्ड बना लिये जाते हैं। कुण्ड़ बनाते समय ही उनमें

हल से खाद–उर्वरक भी दिये जा सकते हैं। इन कुण्डों में 50–50 सेमी. की दूरी पर 3–4 बीजों को बोया जाता है। जब पौधों में 2–4 वास्तविक पत्तियाँ आने लगे तब प्रत्येक बुवाई स्थल पर एक या दो स्वस्थ पौधे ही रखें तथा इसी समयावधि में कुंडों में अंतराशस्य क्रियाऐं करें एवं उन्हें हल्की नालियों जैसा स्वरूप दे देना चाहिए। कुण्ड विधि से बुवाई करने पर नाली विधि की तरह ही व्यवस्थित फसल होती है एवं इनमें भी फसल उत्पादन तथा सुरक्षा प्रबन्धन तकनीकों को अपनाया जा सकता है। इस विधि से बुवाई करने पर अगर सिंचाई जल की व्यवस्था हो तो फव्वारा पद्धति अपनाकर फसल में जीवनदायी सिंचाई भी की जा सकती है।

(स) मिश्रित फसल

शुष्क क्षेत्रीय वर्षा आधारित परम्परागत खेती में अभी भी स्थानीय सब्जी वाली फसलों में मतीरे को मिश्रित फसल के रूप में छिड़काव विधि से बोया जाता है। इस प्रकार बुवाई करने से अव्यवस्थित पौधे उगते हैं जिनकी न तो सही ढंग से संभाल हो सकती है और न ही उन्नत तकनीकी क्रियाओं को अपनाया जा सकता है। मिश्रित फसल में व्यवस्थित बुवाई के साथ उन्नत तकनीक अपनाकर अधिक उत्पादन लिया जा सकता है। मिश्रित फसल उत्पादन प्रणालियों में कतारों में व्यवस्थित बुवाई कर इनके मध्य भाग में कुण्ड विधि द्वारा मतीरा उत्पादन किया जा सकता है। इसमें मतीरे के लिए खेत में 5–6 मीटर की दूरी के अंतराल पर देशी हल से गहरे कुण्ड बना देते हैं। इन कुण्ड़ों में 50–50 सेमी. की दूरी पर 3–4 बीजों की बुवाई करें तथा जब पौधे 15–21 दिनों के हों तब बुवाई स्थल पर एक या दो स्वस्थ पौधे रखकर शेष निकाल देवें। इसी समय कुण्ड को 25–30 सेमी. चौड़ी नाली का रूप दे देवें ताकि बरसात का जल इनमें अधिक संग्रहित हो सके जो कि फसल के लिये लाभदायक होता है। इस ढंग से बुवाई करने पर फसल व्यवस्थित होती है तथा अंतराशस्य क्रियाऐं एवं फल तुड़ाई कार्य आसानी से हो जाते हैं।

(द) बाड़ी विधि

रेगिस्तानी प्रदेश में मतीरे की खेती करने की यह प्राचीन प्रचलित विधि है। इस विधि द्वारा असिंचित, उबड़–खाबड़ टीलों में भी मतीरे की वर्षा आधारित फसल की जा सकती है। लेकिन इस परम्परागत विधि से दो वर्षों में मतीरे की एक फसल ही ली जा सकती है। बाड़ियों में वर्षा आधारित फसल उत्पादन हेतु चयनित खेत को दो बराबर भागों में विभक्त कर लिया जाता है। एक भाग को मतीरे की एक फसल समाप्त होने के तुरन्त बाद (नवम्बर) आगामी वर्षा ऋतु के पश्चात् अगले वर्ष मार्च (मतीरे की बुवाई का समय) तक खरपतवार से मुक्त रखा जाता है जिससे कि उस समय तक भूमि में अधिकतम जल संग्रहित रह सके। इसी तरह खेत के दूसरे भाग को (जिसको पिछले वर्ष खाली छोड़ा था) मार्च में मतीरे की बुवाई के लिए तैयार किया जाता है।

इस विधि में सर्वप्रथम चयनित प्रक्षेत्र के चारों ओर झरबेरी के कांटों से बाड़ बंदी की जाती है तथा बाड़ के बाहर चारों और लगभग 60 सेमी. गहरी खाई खोद देते हैं जिससे जंगली जानवरों से बचाव के साथ ही आंधियों की रेत को बाहर ही रोका जा सके। इसके पश्चात् अन्दर के सारे क्षेत्र को 1.0–1.5 x 1.0–1.5 मीटर की क्यारियों में विभक्त कर दिया जाता है। सनिया (*Crotolaria burhia*) अथवा बूई (*Aerva pseudotomentosa*) जैसे स्थानीय सूखे पौधों को भूमि में उलटा गाड़ कर क्यारियों की मेड़ बनाई जाती है। यह मेड़ें वायुरोधी का काम करती हैं तथा फसल को तेज हवाओं, लू व रेत के गर्म कणों के नुकसान से फसल को बचाती हैं।

इन तैयार क्यारियों में 15 x 15 x 15 सेमी. आकार के 4–8 गड्ढ़े बना लिये जाते हैं। प्रत्येक गड्ढ़े में एक किलोग्राम देशी सड़ी हुई गोबर या भेड़–बकरी की मींगनी की खाद मिट्टी के साथ मिलाकर भर देते हैं। यह कार्य मार्च के शुरू में ही कर लिया जाना चाहिए जिससे कि मार्च के मध्य तक बुवाई की जा सके। प्रत्येक गड्ढ़े में 4–5 बीज बोते हैं। बुवाई से पूर्व बीज को उपचारित किया जाता है। बुवाई के तुरन्त बाद गड्ढ़े में लगभग एक लीटर पानी देना चाहिए ताकि बीज अंकुरण शीघ्रता से हो। भूमि की ऊपरी सूखी परत गीली होने से वह नीचे की जल संग्रहित गीली भूमि से मिल जाती है और तेजी से जल संचार होता है। बुवाई के 18–21 दिन बाद अवांछित पौधों को उखाड़ कर बुवाई स्थल पर एक या दो पौधे ही रखें। इस समय पौधे के चारों तरफ हल्की निराई–गुड़ाई कर बाड़ी को खरपतवार से मुक्त रखना चाहिए।

गर्मी में पौधे भूमि की निचली सतह में संग्रहित जल के आधार पर वृद्धि करते रहते हैं तथा वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने से पूर्व ही इनकी जड़ों का अच्छा विकास हो जाता है। वर्षा ऋतु से पूर्व प्रारम्भिक अवस्था में पौधों पर छोटे–छोटे फल आते हैं जिन्हें लोइयाँ के रूप में तोड़कर सब्जी हेतु बेचा जाता है। लोइयाँ अगस्त तक तोड़ी जाती हैं क्योंकि इस समय मानसून पूर्व की बरसात व वर्षा ऋतु के आगमन से बेलों का विकास अधिक होता है। इसके पश्चात् फसल में फलों को पूर्ण विकसित होने हेतु छोड़ दिया जाता है। प्रत्येक पौधे पर 3–4 फल रखना उपयुक्त रहता है तथा ये फल सितम्बर से नवम्बर माह तक पक कर तैयार हो जाते हैं। फसल तुड़ाई के पश्चात् खेत को जुताई करके लगभग अगले 16 माह तक खाली छोड़ दिया जाता है। इस प्रकार खेत के प्रत्येक आधे भाग से दो वर्ष में एक बार फसल ली जा सकती है।

बारानी बाड़ियाँ प्रायः 0.50–2.50 हेक्टेयर क्षेत्र में बनायी जाती है जो कि पूर्ण रूप से प्रक्षेत्र की भौगोलिक स्थिति पर निर्भर करती है। बारानी बाड़ियों में संस्थान द्वारा विकसित उन्नत तकनीकियों को अपनाकर फसलों से अधिक उत्पादन लिया जा सकता है।

1. बारानी बाड़ियों में बागवानी के लिए खेजड़ी आधारित प्रक्षेत्र प्रबंधन तरीकों को अपनाकर फसल उत्पादन तथा अनुकूल वातावरण बनाने के लिए स्थानीय पेड़– पौधों का समावेश कर

प्रक्षेत्र का निर्माण एवं बाड़ी बंदी को प्राथमिकता से अपनाना होगा। बाड़ियों वाले प्रक्षेत्र में अभी तक स्थानीय प्रजातियों के पेड़–पौधे व झाडियाँ जो कि अव्यवस्थित रूप से उगे होते हैं एवं इनकी विशेष संभाल भी नहीं की जाती है। अतः ऐसी स्थिति में इन्हें बाड़ी प्रक्षेत्र के चारों ओर एवं खेत के मध्य में एक निश्चित दूरी पर व्यवस्थित पट्टिकाओं के रूप में विकसित करना चाहिए।

2. वर्षा जल संग्रहण तथा मृदा व नमी संरक्षण जैसे कार्यों को वैज्ञानिक तरीकों से अपनाना।

3. बारानी बाड़ियों में भी संस्थान द्वारा विकसित मतीरे की किस्मों जैसे एएचडब्ल्यू–19, एएचडब्ल्यू–65 व थार माणक के बीजों का उपयोग करें।

4. बीजों की बुवाई पूर्व उपचारित करने हेतु स्वस्थ बीजों को 4–6 घण्टों तक पानी में डूबों कर रखें फिर तले में बैठे बीजों को इकट्ठा कर गीली टाट की पोटली में बांधकर रातभर एक फीट गहरे गड्ढ़े या देशी खाद की ढेरी के नीचे दबाकर रखें जिससे बीजों में अंकुरण शीघ्र व अच्छा होगा।

5. वर्षा ऋतु के आगमन के साथ ही बाड़ियों में अच्छी निराई–गुड़ाई करें तथा बरसात वाले दिन फसल में यूरिया खाद का भुरकाव करें। इस अवधि में यूरिया का छिड़काव (20 ग्राम/लीटर पानी) भी लाभदायक है। फसल में फूल व फल बनने के समय कीट नियन्त्रण हेतु रोगार या मेलाथियान दवा (1.5 मिलिलीटर दवा/लीटर पानी) का छिड़काव अवश्य करें।

6. इस तरह की वर्षा आधारित फसल उत्पादन व्यवस्था में मतीरे के पौधों में अच्छी बढ़वार व फलन के लिए अगस्त माह तक लगने वाले छोटे व कच्चे फलों की तुड़ाई लोइयों के रूप में कर बेचना चाहिए, साथ ही बड़े फलों के लिए एक पौधे पर 3–4 फल पकने के लिए सुरक्षा के उपायों के साथ रखें।

सिंचाई जल प्रबंधन

क्षेत्रीय जलवायु को आधार बनाकर फसल उत्पादन तकनीकों का विकास करते समय लागत, जल संरक्षण, स्थानीय संसाधनों का समुचित उपयोग, उपज व स्थिरता आदि बातों को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है। संस्थान में कुष्माण्ड कुल की सब्जी उत्पादन तकनीकों का विकास कार्य वर्ष 1998 से 2010 तक इस तरह किये गये जिससे कि शुष्क क्षेत्रीय जलवायु में इनकी सफलतापूर्वक खेती सीमित जल संसाधन के उपयोग से की जा सके। फसल उत्पादन तकनीकों का विकास एक सतत् एवं योजनाबद्ध अनुसंधान कार्य के रूप में इस तरह किये गये कि सीमित सिंचाई जल व न्यूनतम लागत के साथ सफल एवं सहजता से यहाँ की प्रतिकूल

जलवायु में खेती की जा सके। खेती के तरीकों व सिंचाई जल प्रबंधन को इस तरह जोड़ा गया जिससे उत्पादन संबंधी आंकड़ों का मूल्यांकन किया जा सके जिसके अंतर्गत क्यारी, नाली व बूंद–बूंद विधि के विभिन्न स्तरों को फसल व मौसम आधारित जांचा गया। इन अनुसंधान कार्यों के निष्कर्षों के आधार पर उत्तम उत्पादन व सिंचाई तरीकों को खेती हेतु प्रसारित किया जा रहा है।

वर्षा ऋतु के आगमन पूर्व खेत में जल संग्रहण की तैयारियाँ

मतीरे में नाली विधि से फसल उत्पादन एवं सिंचाई द्वारा एक तिहाई जल (33 प्रतिशत) की बचत होती है। क्यारी विधि में जहाँ पूरे क्षेत्र की फसल में सिंचाई करनी पड़ती है वहीं नाली विधि से केवल नालियों में ही पौधों को सींचा जाता है। नाली विधि में बेल फैलने वाला क्षेत्र असिंचित रखा जाता है। किसान क्यारी या कुंड विधि से बुवाई कर फव्वारा पद्धति (sprinkler system) से भी सिंचाई करते हैं और इस विधि से भी पानी पूरे खेत में लगता है तथा अधिक संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है। पूरे फसल क्षेत्र में सिंचाई करने से खरपतवार अधिक पनपते हैं तथा खेत में लगातार नमी बनी रहने से फल खराब हो जाते हैं। मतीरे में सिंचाई व जल प्रबंधन अनुसंधान कार्य के आधार पर बहाव विधियों में नाली विधि (channel technology)

सीमित सिंचाई जल से फसल उत्पादन की नाली विधि

सर्वोत्तम एवं सरल है। नाली विधि में एक ओर जहाँ सिंचाई जल की भारी बचत होती है, वहीं दूसरी ओर बरसात के दिन यह नालियाँ जल संग्रहण का कार्य भी करती हैं। इस विधि से सिंचाई करते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखें कि पानी बेल फैलने वाले क्षेत्र में नहीं बहे।

शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में जहाँ सिंचाई जल की पर्याप्त सुविधा है, वहाँ ग्रीष्म ऋतु में मतीरे की सफल खेती समतल खेतों में नाली विधि से की जा सकती है। इस विधि में पौधों की प्रारम्भिक अवस्था से फल जमाव होने तक 6–7 दिनों के निश्चित अन्तराल पर सिंचाई करें। मतीरे में सिंचाई नियमित अन्तराल पर जरूरी है, विशेष रूप से जब फल आकार लेने लगें एवं पकने की स्थिति में पहुँचते हैं। कई बार फसल पकने के समय भीषण गर्मी एवं धूल भरी आंधियों का प्रकोप हो जाता है। ऐसी स्थिति में फलों व फसल की सुरक्षा के लिए समय पर सिंचाई प्रबन्धन कार्य अत्यंत जरूरी है।

सुनिश्चित सिंचाई जल व्यवस्था में बूंद–बूंद पद्धति (drip irrigation) अपनाने से मतीरे के उत्पादन में उत्साहजनक परिणाम मिले हैं। इस विधि में न केवल सिंचाई जल की बचत होती है, साथ ही फसल में अच्छी वृद्धि होने से विपणन योग्य फलों की उत्पादकता में भी बढ़ोतरी होती है। शुष्क क्षेत्रीय जलवायु को आधार बनाकर किये गए अनुसंधान कार्यों से बूंद–बूंद पद्धति में खेती के लिए 14–16 मिलीलीटर व्यास की एकल पाइप लाइनें (laterals, 14–16 mm) जिन पर 50–50 सेमी. की दूरी के अन्तराल पर चार लीटर प्रति घंटा पानी छोड़ने वाले इन–लाइन ड्रीपरर्स (in-line drippers, 4lph) मतीरे में सर्वाधिक उपज के लिए उपयुक्त हैं। बूंद–बूंद प्रणाली से फसल उत्पादन के लिए चयनित खेत में रेखांकन कर 2–2 मीटर की दूरी के अंतराल पर एकल पाइपों (laterals) को विधिवत् बिछावें तथा इनको खेत के मध्य में बिछी 50 से 75 मिलीमीटर व्यास की पाइप लाइन से जोड़ें। इन लेट्रल पाइपों की एक तरफा लम्बाई 25 से 30 मीटर तक ही सीमित रखें तथा इनको पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर ही बिछावें।

बूंद–बूंद प्रणाली से मतीरा फसल उत्पादन तकनीक

सारणी 12: मतीरा किस्म थार माणक का नाली व बूंद–बूंद प्रणाली से उत्पादन प्रर्दशन (ग्रीष्म व वर्षाकालीन फसल वर्ष 2008 से 2010 का औसत)।

लक्षण	नाली विधि	बूंद–बूंद विधि
प्रथम नर फूल खिलने में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	33.5	35.5
प्रथम नर फूल खिलने की पौधे पर गांठ संख्या	5.5	5.7
प्रथम मादा फूल खिलने में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	41.5	43.7
प्रथम मादा फूल खिलने की पौधे पर गांठ संख्या	9.8	10.2
प्रथम फल तुड़ाई में लगे दिनों की संख्या (डीएएस)	72.5	78.5
बेल की लंबाई (मीटर)	2.2	2.54
विपणन योग्य फलों की संख्या / पौधा	3.7	4.24
विपणन योग्य फल उपज / पौधा (किग्रा.)	12.33	15.58
फल का वजन (किग्रा.)	3.12	3.54
फल की लंबाई (सेमी.)	21.0	23.5
फल की परिधी (सेमी.)	54.0	58.2
गूदे का रंग	लाल	लाल
गूदे के ठोसपन की श्रेणी	ए	ए
टीएसएस (डिग्री ब्रिक्स)	9.8	10.2
खाने योग्य गूदे की मोटाई (सेमी.)	13.8	14.9
अखाद्य गूदे की मोटाई (सेमी.)	1.48	1.52
बीजों की संख्या / फल	319.5	335.5
बीज का वजन / फल (ग्राम)	39.3	42.2
बीज उपज / पौधा (ग्राम)	108.4	122.2
100 बीजों का वजन (ग्राम)	11.8	12.5
बीज की लंबाई (सेमी.)	1.31	1.32
बीज की चौड़ाई (सेमी.)	0.74	0.75
बीज की मोटाई (सेमी.)	0.29	0.30
बीज का रंग	काला	काला

खेत की तैयारी के समय जिन जगहों पर लेट्रल पाइप आ रहे हैं उसी के आस–पास 50–60 सेमी. चौड़ाई की हल्की–गहरी नालियाँ या कुण्ड बनावें। इन नालियों में देशी खाद व उर्वरकों का मिश्रण अच्छी तरह से मिलाकर समतल कर उनके मध्य में लेट्रल पाइपों को व्यवस्थित रखें। बुवाई पूर्व हल्की सिंचाई कर प्रत्येक इन–लाइन ड्रिपर वाले स्थान के आस–पास 3–4 बीजों की बुवाई करें। जब पौधे 18–21 दिनों के हो जाएं तब प्रत्येक बुवाई स्थल पर एक या दो स्वस्थ पौधे रखकर शेष को निकाल देवें। शुष्क क्षेत्रीय जलवायु को आधार बनाकर बूंद–बूंद प्रणाली से उगाई गई मतीरे की फसल में दो–तीन दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करना सर्वोतम रहा है तथा सीमित जल संसाधन में फसल की प्रारम्भिक अवस्था में 1.0–1.5 घंटा तथा फलन के समय 1.5–2.0 घंटा सिंचाई कार्य करें। सम्भव हो तो सिंचाई शाम के समय ही करें एवं मौसम आधारित स्थानीय जलवायु की सूचनाओं का उपयोग फसल उत्पादन संबंधी कार्यों के लिए करें।

निराई–गुड़ाई

मतीरे की फसल में अच्छी उपज के लिए उसके पौधों में उचित वानस्पतिक वृद्धि जरूरी है। इसके लिए खेत का खरपतवारों से मुक्त रहना अत्यंत आवश्यक है। शुष्क क्षेत्र में रेतीली मिट्टी वर्षा व सिचांई के बाद कठोर परत के रूप में जम जाती है जो कि बीजों के अंकुरण एवं नवोदित पौधों की प्रारम्भिक वृद्धि में बाधक होती है। इसलिए बीज अंकुरण के बाद से ही एक या दो बार हल्की–हल्की निराई–गुड़ाई पौधों के आस–पास अवश्य करें। नाली या बूंद–बूंद विधि से बोई गई फसल में सिंचाई के बाद पौधों की प्रारम्भिक अवस्था तक उनके आस–पास एक नियमित अंतराल पर निराई–गुड़ाई अवश्य करें जिससे वहाँ से छोटी अवस्था में ही अवांछनीय पौधों एवं खरपतवारों को निकाला जा सके। इसी तरह अच्छी व स्वस्थ फसल के लिए बुवाई वाला नाली क्षेत्र सदैव खरपतवारों से मुक्त रखा जाना चाहिए।

मतीरे की फसल में बेल फैलने वाले क्षेत्र को भी 1–2 बार निराई–गुड़ाई कर खरपतवारों से मुक्त रखें। जब बेलें अच्छा आकार ले लेती हैं तब इस क्षेत्र में निराई–गुड़ाई नहीं करनी चाहिए। नाली या बूंद–बूंद प्रणाली अपनाकर व्यवस्थित खेती में बेल फैलने वाले क्षेत्र में बुवाई के 25 से 40 दिनों के मध्य 1–2 बार रोटावेटर या पावर टिलर से जुताई कर खरपतवार नियंत्रण कम लागत में संभव है। खेत में यदि खरपतवारों की समस्या ज्यादा है एवं यह कार्य निराई–गुड़ाई से करना मुश्किल हो तब एक किलोग्राम पेन्डीमिथोलिन (3.3 मिलीलीटर स्टाम्प प्रति लीटर पानी की दर) के 1000 लीटर पानी के घोल का एक हेक्टेयर क्षेत्रफल में बुवाई के 1–2 दिन बाद छिड़काव किया जा सकता है।

नमी संरक्षण

काश्तकारी जागरुकता, सिंचाई के संसाधनों में विकास तथा बाजार में मतीरे की अच्छी मांग के कारण शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्र के किसान इसे ग्रीष्म ऋतु की एक प्रमुख फसल के रूप में उगाने लगे हैं। मरूप्रदेश की कठोर वातावरणीय परिस्थितियाँ विशेषकर अत्यधिक तापमान व वाष्पीकरण तथा गर्म हवाऐं मतीरा उत्पादन में बाधक रहती हैं। मतीरे की कई किस्में इस जलवायु में न तो अच्छी बढ़वार लेती हैं और न ही उनसे विपणन योग्य उपज मिलती है। इनमें अधिकांश फलों का ऊपरी भाग परिपक्व होने से पूर्व ही झुलस जाता है। यहाँ की रेतीली बालू मिट्टी में पानी रोकने की क्षमता बहुत ही कम होती है इस कारण पौधों में हमेशा पानी की कमी बने रहने से फसल में लगातार सिंचाई करने की आवश्यकता बनी रहती है।

खेत में फसल उत्पादन के लिए उचित वातावरण बनाने के साथ ही नमी संग्रहण एवं संरक्षण करने की आवश्यकता होती है। इस कार्य के लिए खेत की वर्षा आगमन पूर्व की जुताई, नाली या गहरे कुण्ड बनाकर खेती, समय–समय पर निराई–गुड़ाई, खरपतवार रहित खेत, पलवार बिछाकर नमी संरक्षण एवं सिंचाई प्रबन्धन सहित सभी फसल उत्पादन संबंधी घटकों पर सुनियोजित व वैज्ञानिक ढंग से क्रियान्वयन करना होगा। वर्षा ऋतु के आगमन के पूर्व जून के अंतिम सप्ताह तथा सर्दियों में दिसम्बर में खेत की गहरी जुताई कर वर्षा जल संग्रहण किया जाना चाहिए। खेत में नालियाँ अथवा गहरे कुण्ड बनाकर फसल के लिए अधिक से अधिक वर्षा जल का संग्रहण एवं संरक्षण किया जा सकता है। इस कार्य से खेत में नमी लम्बे समय तक बनी रहती है। नाली अथवा कुण्ड विधि से बुवाई करने से बरसात के दिन इन नालियों अथवा कुण्डों में पानी संग्रहण होता है जो कि बोई गई फसल के लिए लाभदायक रहता है।

निराई–गुड़ाई करने और खेत को खरपतवारों से मुक्त रखने से भूमि की ऊपरी सतह का सम्पर्क निचली सतह से टूट जाता है। इससे खेत का पानी वाष्पित होने से रूक जाता है। लगातार पौधों की जड़ों के आस–पास गुड़ाई करते रहने से हवा का संचालन सुचारू रूप से रहता है जिससे पौधों का विकास अच्छा होता है। खेत में बेल फैलने वाली जगहों में स्थानीय घास–फूस से पलवार (mulch) करने से नमी तो सुरक्षित रहती है साथ ही जमीन का तापमान भी कम हो जाता है जिससे पौधों में अधिक फल जमाव एवं नव विकसित फलों का विकास अच्छा रहता है। पलवार से रेत के गर्म कणों को छोटे मुलायम फलों तक जाने से रोका जा सकता है जिससे फल विकास एवं उत्पादन पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

इनके अलावा सीमित सिंचाई जल की स्थिति में मौसम आधारित सूचना तंत्र का उपयोग कर नाली अथवा बूंद–बूंद प्रणाली अपनाकर एक नियमित अंतराल पर सिंचाई करने से मतीरे में अच्छी गुणवत्ता वाला फलोत्पादन होता है। केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर में मतीरे की

फसल में एकीकृत नमी संरक्षण एवं सिंचाई प्रबन्धन द्वारा 40 से 60 प्रतिशत तक अधिक फल उपज प्राप्त की है जिसका मुख्य कारण विपणन योग्य फलों की संख्या में अत्यधिक बढ़ोतरी का होना रहा है।

फसल उत्पाद प्रबन्धन

मतीरे की खेती की सफलता मुख्यः रूप से किस्मों का चयन, बुवाई का समय, सिंचाई विधि व फसल प्रबन्धन पर निर्भर होती है। इस प्रदेश में मतीरा ग्रीष्म व वर्षाकालीन फसल के रूप में पैदा तो किया जा सकता है परन्तु वातावरणीय रूकावटों को ध्यान में रखकर लाभकारी खेती हेतु फसल उत्पादन एवं उत्पाद प्रबंधन को विशेष रूप से समझना होगा। इसके कच्चे फलों (80–100 ग्राम) की सब्जी बनती है एवं यहाँ के स्थानीय बाजारों में टिण्डे की तरह इनकी भी काफी मांग रहती है।

इस क्षेत्र में फरवरी–मार्च तथा जून–जुलाई माह में फसल बुवाई के लगभग 45–50 दिनों बाद कच्चे फलों की तुड़ाई प्रारम्भ हो जाती है तथा सुनियोजित ढंग से बुवाई कर काश्तकार लम्बी समयावधि तक इनका उत्पादन ले सकता है। अच्छी फसल उत्पादन व्यवस्था द्वारा एक स्वस्थ बेल से 3–4 पके फलों के साथ–साथ 5–9 तक लोइयों के रूप में उपज ली जा सकती है। इस तरह एक हेक्टेयर क्षेत्र से 300–500 क्विंटल पके फल तथा 5–10 क्विंटल कच्चे फलों का उत्पादन हो जाता है। असिंचित व सिंचित फसल उत्पादन प्रणालियों से खेती कर छोटे (लोइयाँ) व पके फलों की समय पर तुड़ाई व विपणन संबंधी कार्य द्वारा अच्छा मुनाफा लिया जा सकता है।

पूर्ण विकसित फलों को पकने पर ही तोड़ा जाना चाहिए क्योंकि इस अवस्था में उनमें अधिकतम मिठास विकसित हो जाती है। आवश्यकता से अधिक पक जाने से फलों की गुणवत्ता कम हो जाती है। फलों की उचित परिपक्वता की जाँच निम्न प्रकार से की जा सकती है– यथा (1) फलों को हाथ से थपथपाने पर धब–धब की भारी आवाज आनी चाहिए जब कि अपरिपक्व फल से टन–टन की आवाज आती है, (2) जमीन से सटे हुए भाग का रंग सफेद या हल्का पीला होने पर फल तोड़ने के लिये उत्तम माना जाता है अथवा (3) फल का डंठल पूर्ण रूप से सूख जाना तथा तने के रोये सूखकर समाप्त होना भी फल पकने की पहचान होती है।

मतीरे की फसल से अधिक आय प्राप्त करने के लिए फलों को खेत स्तर पर ही वर्गीकृत कर विक्रय के लिए ले जाना चाहिए। विपणन योग्य फलों को किस्म, आकार व वजन के अनुरूप 2–3 वर्गों में बाँट देना चाहिए। बदरंग, बदरूप, कटे–फटे एवं छोटे फलों को छंटनी द्वारा एकत्रित कर उनसे बीज निकालते रहना चाहिए क्योंकि मतीरे के बीजों का व्यावसायिक महत्व भी होता है। इनके फलों को बाजार में विपणन हेतु ऊंटगाड़ों या ट्रकों से भेजा जाता है। फलों को आपसी

रगड़ से बचाने हेतु घास–फूस पर व्यवस्थित रूप से जमा कर ले जाना चाहिए। सामान्य तापमान पर फलों को 8–12 दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इससे अधिक दिनों तक फलों के रंग, मिठास व सुगंध में तो कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता है परन्तु बीजों के पास वाला गूदा उत्तरोतर मुलायम होता जाता है।

आय–व्यय का ब्यौरा

शुष्क क्षेत्रीय जलवायु में उन्नत फसल उत्पादन तकनीकों को अपनाकर असिंचित या सिंचित ढंग से मतीरे की खेती कर कम लागत में भी अधिक लाभ लिया जा सकता है। विभिन्न तरीकों से फसल उत्पादन का आय–व्यय का ब्यौरा सारणी संख्या–13 में दिया गया है।

सारणी 13: मतीरे की फसल से आय–व्यय का विवरण (अध्ययन वर्ष 1996 व 1997)*

खेती की विधियाँ	फसल उत्पादन लागत (रू./हे.)		उपज (हे.)			कुल आय (रू./हे.)	शुद्ध आय (रू./हे.)	शुद्ध आय (रू./हे.)
	घरेलू श्रम व संसाधनों का मूल्य जोड़कर	घरेलू श्रम व संसाधनों का मूल्य घटाकर	फल (क्विं.)	लोइयां (क्विं.)	बीज (किलो)			
1	2	3	4			5	6(5–2)	7(5–3)
अ) वर्षा आधारित मिश्रित खेती में मतीरा भी एक भाग	700	200	30	0.25	10	3135	2435	2935
ब) वर्षा आधारित एकल खेती	3600	1000	132	1.00	20	13620	10020	12620
स) बाड़ी विधि से वर्षा आधारित व्यवस्थित एकल खेती	9500	1500	185	7.00	40	20840	11340	19340
द) सिंचाई जल प्रबन्धन कर व्यवस्थित एकल खेती	12500	2500	300	5.00	35	31710	19210	29210

*नोटः–आधार वर्ष 1996 व 1997। फसल उत्पादन व्यवस्था में कुल लागत का 75 प्रतिशत भाग किसान के घर में उपलब्ध श्रमशक्ति, पशुधन संसाधन (देशी खाद व ऊंटगाड़ा) तथा देशी प्रजातियों के पेड़– पौधों से प्राप्त झाड़ियाँ व घास–फूस को उत्पादन व विपणन व्यवस्था में काम में लेकर उत्पादन लागत बहुत ही कम कर सकता है।

फसल सुरक्षा

फसल में कम से कम मात्रा में नुकसान रखना ही उत्पादन में वृद्धि करने की एक उत्तम विधि हो सकती है। फसल में क्षति पहुँचाने वाली विभिन्न तरह की बीमारियों एवं कीटों के अलावा अचानक होने वाली वातावरण परिस्थितियाँ भी हैं जो फसल पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। अतः भरपूर पैदावार के लिए इन सभी का समुचित, सुरक्षित एवं समन्वित प्रबन्धन जरूरी है। फसल प्रबन्धन की ऐसी व्यवस्था हो जिसमें सुरक्षा की मिली–जुली प्रणालियाँ हों जिससे संतुलित एवं सुरक्षित बचाव व नियंत्रण हो सके। फसल उत्पादन प्रक्षेत्र में उन्नत कृषि क्रियाऐं एवं तकनीकों का इस तरह समावेश हो कि फसल के लिए खेत में ऐसी वातावरण व्यवस्था पैदा हो जाए जिससे विपरीत परिस्थितियों, रोग तथा कीड़ों की स्थिति में फसल पर कम से कम प्रभाव पड़े एवं समय पर आसानी से नियंत्रण भी किया जा सके।

फसल प्रबन्धन एक ऐसा घटक है जिसके अन्तर्गत उन सभी उन्नत कृषि तकनीकों का क्षेत्रीय जलवायु के आधार पर समावेश होता है जिससे फसल उत्पादन हेतु खेत में उचित वातावरण विकसित किया जाता है जो फसलों को विपरीत परिस्थितियों वाली जलवायु, बीमारियों एवं कीड़ों से बचाव करता है। इस प्रबन्धन योजना में प्रक्षेत्र चयन के अलावा समय–समय पर खेतों की सफाई, आस–पास के खेतों की भी सफाई, फसल बुवाई के पूर्व खेतों की गहरी जुताई एवं तैयारी, खेत व आस–पास से इकट्ठा किया गया रोग ग्रस्त व अन्य कचरे को नष्ट करना, फसल चक्र अपनाना आदि प्रमुख हैं। खेत में उचित वातावरण एवं समुचित संसाधनों का सदुपयोग हेतु क्षेत्रीय जलवायु को आधार बनाकर सोची समझी बागवानी आधारित कृषि उत्पादन प्रणालियों को व्यवस्थित ढंग से लागू करना जरूरी है।

सुरक्षित उत्पादन प्रणालियों के अन्तर्गत प्रक्षेत्र/खेत की जुताई से लेकर फसल कटाई तक वह सभी क्रियाऐं जैसे स्वस्थ एवं उपचारित बीजों का प्रयोग, व्यवस्थित बुवाई, पौधे से पौधे की दूरियाँ एवं पौधे की प्रति इकाई संख्या, संतुलित पोषण एवं मृदा का स्वास्थ्य संरक्षण, सिंचाई जल व नमी प्रबन्धन, लाभकारी जीवों व प्राणियों के लिए सुरक्षित खेती हेतु जैविक व रासायनिक तकनीकों का समन्वय इत्यादि शामिल है। व्यावसायिक स्तर पर खेती की योजना के अन्तर्गत जहाँ एक के बाद एक फसल उगाई जाती है वहाँ केवल कृषि एवं जैविक क्रियाओं से कीड़ों एवं रोगों का प्रबन्धन नहीं कर सकते हैं। प्रक्षेत्र में रासायनिक दवाओं का फसल की वानस्पतिक वृद्धि, सम्भावित कीड़े व बीमारियों के होने का अंदेशा लगाकर पहले से ही इनसे बचाव हेतु उपाय करना चाहिए।

(क) प्रमुख कीट एव नियंत्रण

शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में मतीरे की फसल को मुख्यतः कद्दू का लाल भृंग (red pumpkin beetle), ऐपीलेकना भृंग (epilachna beetle), फल मक्खी (fruit fly), मोयला/पर्ण जीव (aphids,

thrips, jassids, white fly), माइट्स (mites) तथा कभी–कभी कुछ अन्य प्रकार के कीड़े भी क्षति पहुँचाते हैं जिनके प्रकोप का स्तर क्षेत्रीय जलवायु एवं फसल प्रबंधन पर निर्भर करता है। फसल में कीड़ों द्वारा कम से कम नुकसान हो इसलिए इनका प्रभावी नियंत्रण समय पर जरूरी है तथा इस कार्य को फसल सुरक्षा प्रबंधन के घटक के रूप में लेना चाहिए।

कद्दू का लाल भृंग : यह नारंगी रंग का चमकीला कीट होता है। इस कीट के भृंग (भौंरा) तथा इल्ली दोनों ही पौधे को नुकसान पहुँचाते हैं। भृंग बीजों के अंकुरण के बाद पौधों की प्रारम्भिक अवस्था की पत्तियों को खाकर क्षति पहुँचाते हैं। इनका आक्रमण अधिक होने पर पत्तियों में केवल शिराएँ ही दिखाई देती हैं तथा कई बार छोटे पौधे पत्तियों रहित हो जाते हैं। बीज अंकुरण के बाद के 15–20 दिनों तक के छोटे पौधों पर अधिक प्रकोप हो जाने से पूरी फसल रातों रात नष्ट हो सकती है।

ऐपीलेकना भृंग : इस कीट के वयस्क एवं भृंग पौधों को क्षति पहुँचाते हैं। भृंग हल्का पीलापन लिए हुए एवं छोटे आकार के होते हैं। बीजों के अंकुरण के बाद से ही इनका प्रकोप दिखाई देने लगता है। भृंग पत्तियों के नीचे चिपके रहते हैं और उन्हें सुखाकर जाला सा बना देते हैं। पौधों की प्रारम्भिक अवस्था में इनका आक्रमण ज्यादा होने पर फसल पूरी तरह नष्ट हो जाती है।

फल मक्खी : प्रौढ़ मक्खी नवविकसित मुलायम फलों के अन्दर अण्डे देती है। अण्डों से निकली इल्लियाँ फल के गूदे को खाती है। इनसे ग्रसित फल छोटी अवस्था में टेढ़े–मेढ़े हो जाते हैं। फल मक्खी के अधिक प्रकोप से कई बार 80–90 प्रतिशत तक फल क्षतिग्रस्त हो जाते हैं जिससे उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

चिचड़ी/बरुथी माईट्स : शुष्क क्षेत्रों में मतीरे की फसल में माईट्स का प्रकोप अब बढ़ता जा रहा है। पत्तियों पर इसके असंख्य संख्या में छोटे–छोटे कत्थई रंग के कीटाणु घूमते नजर आते हैं जो रस चूसकर पौधों को कमजोर कर देते हैं तथा पत्तियों पर जाला बन जाता है। ग्रीष्म ऋतु वाली फसल में जब लगातार धूल भरी आंधियाँ चलती हैं उस समय पौधों की पत्तियों पर रेत जम जाने से इस कीट का प्रकोप अधिक हो जाता है। अगर पौधों की प्रारम्भिक अवस्था में ही इनके प्रकोप से जाला पड़ जाता है तो फसल पूरी तरह नष्ट हो जाती है।

चेपा, हरा तेला, मोयला या पर्ण जीव : ये छोटे–छोटे हरे या हल्के काले रंग के कीट होते हैं जो पौधों का रस चूसते हैं। फसल की प्रारम्भिक अवस्था में इनका आक्रमण होने पर पौधे कमजोर पड़ जाते हैं तथा पत्तियाँ व नवविकसित प्ररोह सूखने लगते हैं। ये कीट लसलसा पदार्थ छोड़ते हैं जिससे पत्तियों व शाखाओं पर काला मल जम जाता है। मतीरे में यदि इन कीटों का आक्रमण प्रारम्भिक अवस्था में हो जाता है तो विषाणुजनित रोगों का प्रभाव अत्यधिक दिखाई देने लगता है एवं फसल पूरी तरह नष्ट हो जाती है।

नियंत्रण

1. बागवानी आधारित फसल उत्पादन प्रक्षेत्र प्रबन्धन तकनीकी योजना अपनाकर व्यावसायिक दृष्टि से खेती करें।
2. सब्जियों की सघन खेती वाले प्रक्षेत्र में उचित फसल चक्र अपनाए। खेत के आस–पास की जमीन साफ व खरपतवारों से मुक्त रखें। मेड़ बन्दी के ऊपर अथवा बाड़ बन्दी के पौधों की खेत की तैयारी के समय सम्भाल करें तथा उन पर किसी कीटनाशी दवा का छिड़काव भी करें।
3. ग्रीष्म ऋतु में मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई कर खेत को सप्ताह भर के लिए खुला छोड़ें जिससे तेज धूप में कीड़ों के अण्डे नष्ट हो जाए।
4. प्रातःकाल कद्दू का लाल भृंग एवं ऐपीलेकना भृंग सक्रिय होते हैं। कम संख्या में होने पर इनको हाथ से पकड़कर मार देना चाहिए। इन कीटों का प्रभावी नियंत्रण हेतु एक किलोग्राम मिथाइल पेराथियान (2 प्रतिशत) चूर्ण को 50 किलो राख के साथ मिलाकर प्रातःकाल के समय पौधों पर अच्छी तरह भुरकाव करें। इस मिश्रण को टाट की थैली में भरकर छोटे पौधों पर भुरकाव करने से भृंग पौधों पर नहीं बैठते हैं।
5. कद्दू का लाल या ऐपीलेकना भृंगों का प्रकोप ज्यादा होने पर इनके नियंत्रण हेतु 5 प्रतिशत मेलाथियान या कार्बेरिल अथवा 2 प्रतिशत मेलाथियान चूर्ण की 25 किलोग्राम मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से पौधों पर सुबह के समय भुरकाव करें। भुरकाव प्रातःकाल ही करें क्योंकि इस समय नमी के कारण कीटनाशी पत्तियों की सतहों पर चिपक जाता है एवं इन पर बैठने से भृंग कीट नष्ट हो जाते हैं। फसल में प्रभावी नियंत्रण हेतु मेलाथियान 50 ई.सी. (1 मि. ली.) या डाई मिथोएट 30 ई.सी. (1 मि.ली.) या कार्बेरिल डब्ल्यू पी. (2 ग्राम) दवा को एक लीटर पानी की दर से घोल बनाकर 10–15 दिनों के अन्तराल पर छिड़काव करते रहना चाहिए।
6. फल मक्खी के नियंत्रण के लिए फूल व फल बनने की प्रारम्भिक अवस्था के समय मेलाथियान 50 ई.सी. या डाईमिथोएट 30 ई.सी. एक मिलीलीटर दवा का प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें। प्रकोप अधिक होने पर 8–10 दिन बाद एक और छिड़काव करें। फल मक्खी की रोकथाम के लिए एक किलो गुड़ को दस लीटर पानी व 20 मिलीलीटर मेलाथियान के साथ घोल तैयार करके पौधों पर छिड़काव करें। इससे प्रौढ़ कीट आकर्षित होते हैं तथा दवाई छिड़के पौधे के भागों को खाने से मर जाते हैं। इस घोल की 50–100 मिलीलीटर मात्रा मिट्टी या प्लास्टिक के बर्तनों में भरकर खेत में कई जगहों पर रखा जाए तो वयस्क कीट प्रलोभन में आकर इसमें गिरकर मर जाते हैं।

7. बरुथी (माईट्स) का इस फसल में रासायनिक दवाओं से प्रभावी नियंत्रण नहीं हो पा रहा है। इसके प्रभाव को रोकने एवं नियंत्रण के लिए खेत की समय–समय पर निगरानी एवं उचित सिंचाई प्रबंधन करें। फसल की प्रारम्भिक अवस्था में इस कीट के लक्षण दिखाई दें तो मेटास्टिाक्स 25 ई.सी. की 1.5 मि.ली. दवा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर पूरे पौधे पर अच्छी तरह से छिड़काव करें। इनका अत्यधिक प्रकोप होने की स्थिति में फसल पर कोलेनल–सस (डाइकोफाल 18.5 ई.सी.) दवा का 2.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से घोल बना कर पौधों की पत्तियों की ऊपरी व निचली सतहों पर छिड़काव करें।
8. चेपा, हरा तेला, मोयला व पर्ण जीव जैसे रस चूसने वाले इन कीटों का उचित समय पर नियंत्रण बहुत ही जरूरी है। इनकी रोकथाम के लिए इमिडाक्लोरोपिड (0.3 मि.ली.), रोगोर (1 मि.ली.) या मेलाथियान (1 मि.ली.) दवा का प्रति लीटर पानी की दर से घोल बना कर एक नियमित अन्तराल पर फसल में छिड़काव करना उचित रहता है।

(ख) प्रमुख रोग एवं नियंत्रण

कुष्माण्ड कुल की सब्जियों में लगने वाले रोगों जैसे फल विगलन (fruit rot), चूर्णी फंफूद / छाछ्या (powdery mildew), रोमिल फंफूद / तुलासिता (downy mildew), याम वर्ण / रूक्ष रोग (anthracnose), झुलसा (blight), पर्णदाग (leaf spot), जड़ विगलन / म्लानि (wilts), जड़ गांठ रोग (nematodes), जीवाण्विक (bacterial diseases) व विषाणु रोगों (viral diseases) में से कुछ मुख्य रोग मतीरे में भी होते हैं तथा इनके प्रकोप का स्तर एवं प्रभाव फसल प्रबंधन एवं क्षेत्रीय मौसम पर निर्भर है। फसल में बीमारियों द्वारा कम से कम नुकसान हो इसलिए इनका प्रभावी नियंत्रण समय पर जरूरी है तथा इस कार्य को फसल सुरक्षा प्रबंधन के घटक के रूप में लेना चाहिए जो निम्नानुसार हैं–

1. खेत / प्रक्षेत्र की स्वच्छता इन रोगों से बचने का प्रमुख उपाय है इसके लिए रोगग्रस्त पौधों एवं खरपतवारों के अवशेषों को समय–समय पर जलाकर नष्ट करते रहना चाहिए। खेत में उचित जल निकास की व्यवस्था रखें तथा सिंचाई जल प्रबंधन व खेती के तरीकों में नाली अथवा बूंद–बूंद विधि को ही अपनावें।
2. बीजों को बुवाई पूर्व उचित दवा से उपचारित अवश्य करें।
3. छाछ्या रोग के नियंत्रण हेतु कैरेथन एस. एल. (एक मि.ली. दवा प्रति लीटर पानी) के घोल का 15–20 दिन के अन्तराल पर रोग के लक्षण होने की स्थिति में ही छिड़काव करें।
4. तुलासिता रोग की रोकथाम के लिए डाईथेन एम–45 / मैन्कोजेब या रिडोमिल एम. जेड. (2 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी) दवा के घोल का छिड़काव करें।

5. श्याम वर्ण रोग के नियंत्रण के लिए बीजों को बुवाई से पहले थाइरम या बेवेस्टिन दवा से उपचारित करें तथा बीमारी का प्रकोप अत्यधिक होने की स्थिति में 3 ग्राम डाईथेन एम.–45 या 2 ग्राम मैन्कोजेब अथवा एक ग्राम बेवेस्टिन दवा प्रति लीटर पानी के घोल का 10 दिन के अन्तराल पर आवश्यकतानुसार फसल पर छिड़काव करें।
6. मतीरे में विषाणु जनित रोगों पर नियंत्रण करने के लिए प्रारम्भिक अवस्था में ही बीमारी से ग्रसित पौधों को उखाड़ कर जला देवें। स्वस्थ पौधों से पहली या दूसरी तुड़ाई से प्राप्त फलों के बीजों का बुवाई में उपयोग करें। फसल में विषाणु रोगों को फैलने से रोकने के लिए इस बीमारी को फैलाने वाले कीटों का प्रभावी नियंत्रण करें जिसके लिए बुवाई के 15–18, 25–28 तथा 35–40 दिनों पर उपयुक्त कीटनाशी दवाओं का छिड़काव करें।

(ग) अकीटनाशी जीव एवं रोकथाम

कुष्माण्ड कुल की सब्जियों में कीड़ों के अतिरिक्त कुछ जीव–जंतु भी हैं जो फसलों को हानि पहुँचाते हैं जिन्हें अकीटनाशी जीव (non-insect pests) कहा जाता हैं। जिनमें जंगली छिपकली, गिलहरी, चूहा, पक्षी (तीतर, मोर, तोता, बुलबुल आदि), खरगोश, हिरण, सूअर, नील गाय जैसे प्रमुख जीव–जंतु मतीरे की फसल को बीज अंकुरण से लेकर फल तुड़ाई तक नुकसान पहुँचाते हैं।

बुवाई के पश्चात् जंगली छिपकली, गिलहरी एवं तीतर मतीरे के बीजों एवं नवांकुर पौधों को भारी क्षति (30–40%) पहुँचाते हैं जिससे कई बार बुवाई कार्य दो से तीन बार तक दोहराना पड़ जाता है। इसी तरह मतीरे के छोटे, बड़े व पके फलों को पक्षियों द्वारा भारी स्तर पर नुकसान (25–30%) पहुँचाया जाता है जिससे विपणन योग्य फल खराब हो जाते हैं। मरूप्रदेश में खेत प्रायः खुले रहते हैं और उनके चारों ओर किसान बाड़ बंदी या तार बंदी नहीं कर पाता है जिससे कई बार फसल में अचानक हिरण, सूअर या नील गायों द्वारा भारी क्षति पहुँचायी जाती है, यहाँ तक कि फल पकने के समय इनके आक्रमण से 50–60% तक नुकसान हो जाता है।

रोकथाम : खेत/प्रक्षेत्र के चारों ओर स्थाई रूप से तार बंदी या बाड़ी बंदी कर फसल को जंगली जानवरों जैसे नील गाय व सूअरों के नुकसान से बचाया जा सकता है। फसल बुवाई की प्रारम्भिक अवस्था तथा फलों में विकास एवं पकने के समय खेत की प्रातः व सायंकालीन गहन रखवाली के कार्य से फलों को पक्षियों से होने वाले नुकसान से बचाया जा सकता है, इसी तरह पूर्णविकसित व बड़े फलों को घास–फूस के साथ बेलों के मध्य ढका जा सकता है।

(घ) अजैविक विकार एवं उनके उपाय

कुष्माण्ड कुल की फसलों में अचानक मौसम परिवर्तन जैसे बेमौसम वर्षा व ओले गिरना, गर्मियों में प्रचंड तापमान के साथ लू के थपेड़े व धूल भरी आंधियाँ, सर्दियों में शीत लहर के साथ

न्यूनतम तापमान व पाले की स्थिति तथा पोषक तत्वों की कमी इत्यादि कई अजैविक कारकों (abiotic factors) के कारण पौधों की वानस्पतिक वृद्धि, फूल एवं फल जमाव, उपज व गुणवत्ता के लक्षणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

लम्बी समय अवधि तक एक समान अधिकतम तापमान बने रहने से पौधों में नर फूल ज्यादा आते हैं तथा फसल में परागण एवं निषेचन की क्रियाऐं प्रभावित होने से फल जमाव एवं गुणवत्तायुक्त उपज कम हो जाती है। कई बार छोटे फल सूख जाते हैं तथा परागण की क्रिया सही नहीं होने से फलों में विकृतियां पैदा हो जाती हैं। इसी तरह फलों का ऊपरी छिलका जलकर (sun burn) ढीला पड़ जाता है जिससे आंतरिक भाग के खराब हो जाने की आशंका भी बढ़ जाती है तथा फल विपणन योग्य नहीं रहते हैं। अधिक गर्मी या सूखे की स्थिति में अनियमित सिंचाई अथवा वर्षा के वितरण से छोटे–बड़े एवं कच्चे–पके फल फट जाते हैं।

ग्रीष्म कालीन अगेती फसल के लिए बुवाई जनवरी माह में की जाती है लेकिन कई बार रात के न्यूनतम तापमान में अचानक कमी हो जाने से नव विकसित पौधों पर पाले जैसा असर दिखाई देता है जिससे पत्तियाँ झुलस कर काली पड़ जाती हैं एवं पौधे सूख जाते हैं।

उपाय : अजैविक विकारों की रोकथाम किसी एक या दो कारकों के उपायों से संभव नहीं है परंतु एक सुनियोजित व समेकित उत्पादन तथा सुरक्षा प्रबंधन के कार्यों से इन अजैविक विकारों का फसल पर प्रभाव कम किया जा सकता है। शुष्क क्षेत्रीय जलवायु में कुष्माण्ड कुल की फसलों से उत्तम गुणवत्ता युक्त अधिक उत्पादन के लिए संस्थान द्वारा एक ऐसी योजना का विकास किया गया है जिसका नाम "बागवानी आधारित फसल उत्पादन प्रक्षेत्र प्रबन्धन" रखा गया है।

इस योजना के अंतर्गत यहाँ की प्रतिकूल जलवायु की स्थितियों में प्रक्षेत्र निर्माण से खेती के लिए एक अनूकुल वातावरण तैयार किया जाता है। इसमें प्रक्षेत्र के चारों ओर बाड़ी बंदी या तार बंदी कर अनुकूल वातावरण तैयार करने वाले स्थानीय पेड़–पौधों को विधिवत् लगाया जाता है तथा उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप खेजड़ी आधारित फसल उत्पादन व्यवस्थाऐं विकसित की जाती हैं जो कि एक निश्चित समय अवधि में खेत में फसल उत्पादन के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करते हैं। इसके साथ–साथ समग्र फसल उत्पादन व्यवस्था के तहत खेत, फसल एवं किस्मों का चयन, फसल चक्र, सिंचाई जल प्रबन्धन, फसल उत्पाद व सुरक्षा प्रबन्धन आदि घटकों को विधिवत् अपनाना होगा।

बीज उत्पादन तकनीकी

मतीरे का बीज उत्पादन करने के लिए ठीक वैसी ही फसल उत्पादन तकनीकी अपनानी होगी जैसे कि ताजा फलों के लिए अपनाई जाती है। इसमें पर–परागण की क्रिया से फल जमाव होने के कारण एक किस्म के बीज का उत्पादन एक ही स्थल पर एक समय में ही सम्भव है।

इसके किस्मगत शुद्ध बीज उत्पादन वाले प्रक्षेत्र के आस–पास से 500–1000 मीटर तक में कुष्माण्ड कुल की फसलें जैसे तूंबा तथा मतीरा/तरबूज की दूसरी प्रजातियों के पौधे या खेत नहीं होने चाहिए।

शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्र की जलवायु बीज उत्पादन के लिए सर्वोत्तम है तथा मरूस्थलीय क्षेत्रों में बीज की फसल के लिए बुवाई कार्य फरवरी या जुलाई के मध्य सप्ताह में करना उपयुक्त पाया गया है। मतीरे की एकल किस्म की बुवाई के पश्चात् जब पौधों में 2–4 वास्तविक पत्तियाँ आने लगे (बुवाई के 18–21 दिन बाद), फूल आना प्रारम्भ हो (बुवाई के 25–35 दिन बाद) तथा फलों के जमाव व परिपक्व होने के समय खेत का 3–4 बार गहन निरीक्षण कर फसल को उसकी शुद्धता के लिए जांच लेवें जिससे बीज वाली फसल में से अवांछनीय पौधों को समय–समय पर अलग किया जा सके। इसी तरह फसल में उत्पादन, सिंचाई व सुरक्षा संबंधी कार्यों को एकीकृत एवं वैज्ञानिक ढंग से अपनावें। स्वस्थ बीज उत्पादन के लिए फसल में फूल आने एवं फल जमाव की समयावधि में 2–3 बार आवश्यक कीटनाशी दवाओं का छिड़काव अवश्य करें।

स्वस्थ एवं भरे हुए बीजोत्पादन के लिए एक पौधे पर 3–4 फलों को पकने के लिए रखें तथा शेष फल जमाव को छोटी व कच्ची अवस्था में ही तुड़ाई करते रहें। पके फलों की पहली तुड़ाई बुवाई के 70–80 दिनों के मध्य तैयार हो जाती है। अतः इस समय कुछ फलों को काटकर उनकी किस्मगत गुणवत्ता व समानता की जांच कर लेवें। इसके बाद पूरे खेत का निरीक्षण कर दो से तीन बार के फलों की तुड़ाई को ही बीज निकालने के लिए उपयोग में लेवें।

मतीरे में गुणवत्ता युक्त बीज उत्पादन के लिए तुड़ाई पश्चात् किस्मगत जांच का तरीका एवं संग्रहण

स्वस्थ पौधों के अच्छी तरह से विकसित एवं सरलता से अलग हुए फलों को ही बीज निकालने के लिए एकत्रित करें। इन चयनित फलों को कुछ दिनों तक छायादार स्थल पर रखें तत्पश्चात फलों को दो भागों में काटकर बीजों को अलग करें। इसके बाद बीजों को पानी से धोकर हल्की धूप–छांव वाली जगह पर 3–4 दिनों के लिए सुखा देवें तथा इस तरह से सूखे बीजों को 8–10 दिनों के लिए हवादार कमरे में खुला रखें। अच्छी तरह से सूखे बीजों (6–8 प्रतिशत नमी) को प्लास्टिक की थैलियों, डिब्बों या टंकियों में भर कर 4–5 वर्षों तक बुवाई के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है।

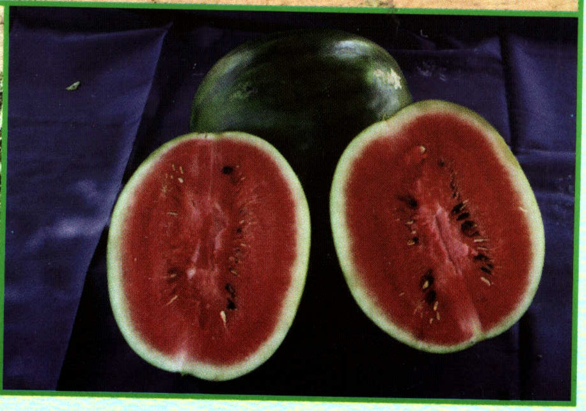

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch